संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

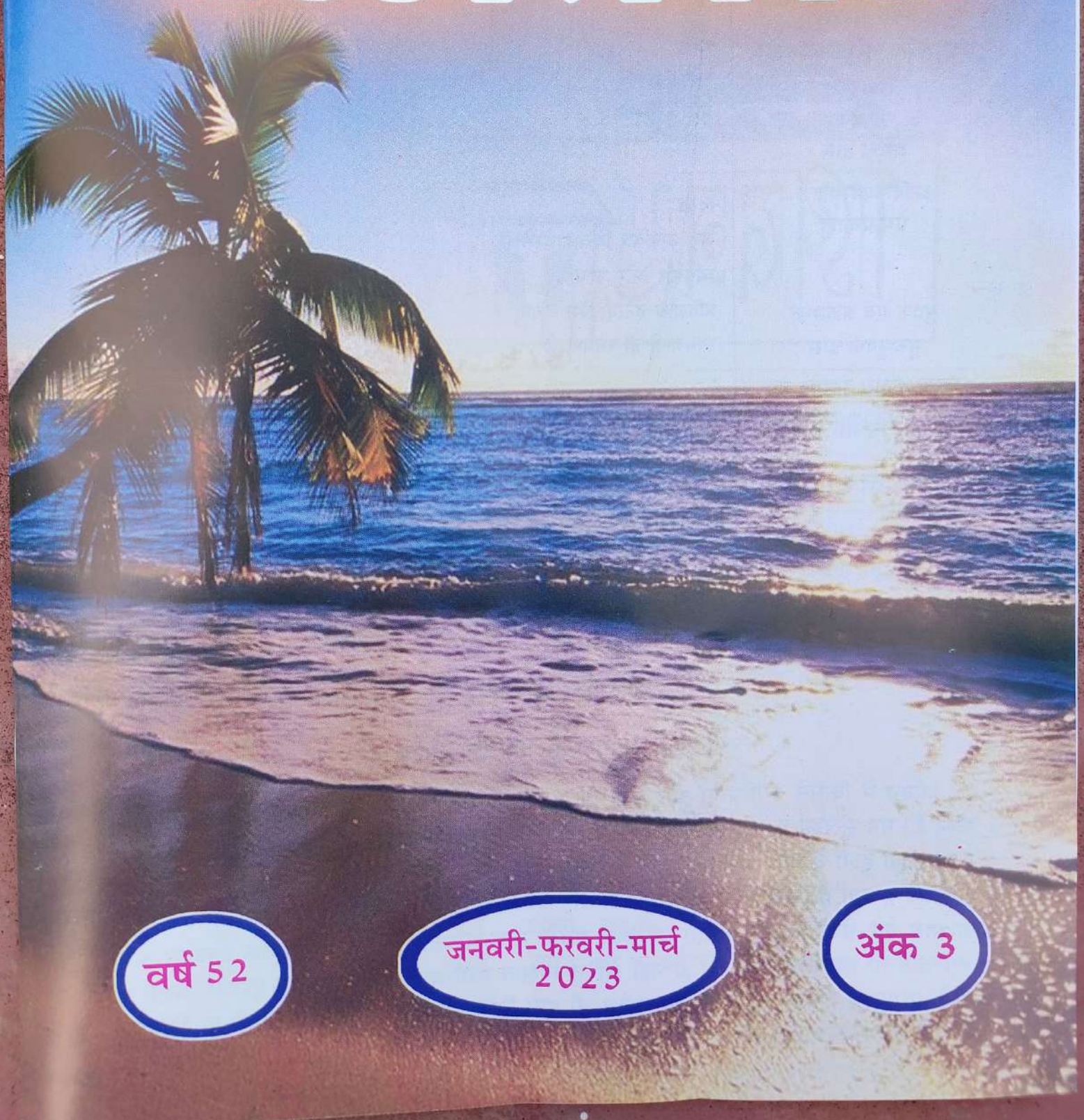

वर्ष 52

जनवरी-फरवरी-मार्च
2023

अंक 3

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

विषय-सूची

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास
पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
गुरु बिन कौन बतावे बाट	सद्गुरु कबीर	1
ये देह गेह हैं नहीं तुम्हारे	हेमंत हरिलाल साहू	6

स्तंभ
पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 12 परमार्थ पथ / 29
बीजक चिंतन / 31

लेख		
जब अपवित्र विचार घेरते हैं!	श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट	7
व्यवहार और परमार्थ	धर्मेन्द्र दास	21
प्रतिशोध हटाएं, प्रेम जगाएं	श्री ललितप्रभ जी महाराज	35
सावधानी ही साधना है		43
कहानी		
खून सफेद	मुंशी प्रेमचंद	15
लघुकथा		
बेरोज़गार टी स्टाल	दिनेन्द्र दास	28

नवीन प्रकाशन

धरती पर स्वर्ग

लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

जीवन में किसने क्या पाया और क्या खोया इसका कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है किसका मन कैसा है। मन सुलझा हुआ शांत-संतुष्ट है तो हर जगह सुख-ही-सुख, आनंद-ही-आनंद है और यदि मन उलझा हुआ अशांत-असंतुष्ट है तो हर जगह दुख-ही-दुख है। मन ही स्वर्ग बनाता है और मन ही नरक बनाता है। यदि लोग प्राणिमात्र के प्रति देवत्व-बुद्धि एवं भगवद् भावना रखकर एक-दूसरे के साथ प्रेम-सेवा, करुणा-समता का तथा सबके साथ सत्यता एवं ईमानदारीपूर्वक व्यवहार करने लग जायें तो यह धरती स्वर्गमय ही नहीं अपितु साक्षात स्वर्ग बन जायेगी। प्रस्तुत पुस्तक 'धरती पर स्वर्ग' परमपूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा विभिन्न जगहों पर विभिन्न समयों पर दिये गये प्रवचनों का संकलन है। पृष्ठ 304 : मूल्य रु. 125.

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

व्याख्याकार—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

(प्रथम खण्ड : चौबीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : बाईसवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 325 रु०, द्वितीय खण्ड 325 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये | वार्षिक 60 रुपये | आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहि मस्कला देय ।
शब्द छोलना छोलिके, चित दर्पण करि लेय ॥ बीजक, साखी 160 ॥

वर्ष 52] प्रयागराज, माघ, वि. सं. 2079, जनवरी 2023, सत्कबीराब्द 624 [अंक 3

गुरु बिन कौन बतावे बाट॥ टेक ॥
भ्रांति पहाड़ी नदिया बीच में, अहंकार की लाट ॥ 1 ॥
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े, लोभ चोर संघात ॥ 2 ॥
मद मत्सर का मेघा बरसत, माया पवन बढ़ ठाट ॥ 3 ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट ॥ 4 ॥

* * *

गुरु मोहि दीनी अजब जड़ी ॥ टेक ॥
सोइ जड़ी मोहि प्यारी लगत है, अमृत रसन भरी ॥ 1 ॥
काया नगर अजब इक बंगला, तामें गुप्त धरी ॥ 2 ॥
पाँचों नाग पचीसों नागिन, सूँघत तुरत मरी ॥ 3 ॥
या कारे ने सब जग खायो, सद्गुरु देख डरी ॥ 4 ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ले परिवार तरी ॥ 5 ॥

पारख प्रकाश

भक्ति न जाने भक्त कहावै

सद्गुरु कबीर की प्रसिद्ध साखी है—

अर्ब खर्ब ले दर्ब है, उदय अस्त लों राज।
भक्ति महातम ना तुले, ई सब कौने काज॥
भक्ति पियारी राम की, जैसी पियारी आग।
सारा पट्टन जरि मुवा, बहुरि ले आवै माँग॥

(बीजक, साखी 228, 267)

अर्थात अरबों-खरबों की संपत्ति हो और जहां सूर्य उदय होता है वहां से लेकर जहां अस्त होता है वहां तक अर्थात पूरे भूमंडल पर एकछत्र राज्य हो, किन्तु यह सब मिलकर भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते तब यह सब किस काम के! इसलिए राम की भक्ति उसी प्रकार प्रिय होनी चाहिए जिस प्रकार आग प्रिय होती है। कभी-कभी आग लगने पर पूरा गांव जलकर राख हो जाता है, जान-माल की बहुत बड़ी हानि हो जाती है, फिर भी लोग आग से घृणा या वैर नहीं करते, किन्तु भोजन बनाने या किसी अन्य काम के लिए दूसरों के घर से आग मांगकर ले आते हैं। इसी प्रकार भक्ति के मार्ग पर चलने पर चाहे जितनी कठिनाइयां आयें, भक्ति का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि भक्ति ही मुक्ति तक पहुंचाने वाली है—भक्ति निसेनी मुक्ति की।

प्रश्न होता है भक्ति कब से है, क्या है, कैसे और किसकी करनी चाहिए? भक्ति कब से है यह प्रश्न ही गलत है। भक्ति तो सदा से है। जब से इस धरती पर मनुष्य है तब से भक्ति है और धरती पर मनुष्य सदा से है इसलिए भक्ति भी सदा से है। कौन किसकी और कैसी भक्ति करता है यह अलग बात है, किन्तु हर मनुष्य के मन में किसी न किसी के प्रति श्रद्धा, समर्पण और निष्ठा तथा पूज्यभाव है और यह श्रद्धा, समर्पण, निष्ठा एवं पूज्यभाव होना भक्ति का ही स्वरूप है। हां, विद्वानों-मनीषियों का कथन है कि साहित्य में भक्ति शब्द का प्रयोग पहली बार संभवतः श्वेताश्वतर उपनिषद् में हुआ। वहां कहा गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।

(श्वेताश्वतर उप. 6/23)

अर्थात जिस मनुष्य के मन में जैसे देव के लिए भक्ति होती है वैसे ही जब गुरु के प्रति भक्ति होती है तब उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है।

कहा जाता है कि भक्ति शब्द भज् धातु से बना है, जिसके सेवा करना, स्मरण-चिंतन करना, छांटना, पसंद करना, सजाना, ग्रहण और त्याग करना, विभाजन करना आदि कई अर्थ होते हैं।

वस्तुतः भक्ति है अपने जीवन-उद्देश्य की प्राप्ति और इष्ट के लिए समर्पण। हर मनुष्य का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है और उस उद्देश्य की पूर्ति, वहां तक पहुंचने के लिए एक मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। वह मार्गदर्शक ही इष्ट है। उस उद्देश्य और मार्गदर्शक के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा, समर्पण एवं निष्ठा ही भक्ति है। यहां यह ध्यान रखना होगा कि मार्गदर्शक का काम केवल दिशानिर्देश करना और प्रेरणा देना होता है, प्रयत्न-पुरुषार्थ तो व्यक्ति को स्वयं करना होता है। यदि कोई चाहे कि मेरे बिना प्रयत्न-पुरुषार्थ किये किसी के आशीर्वाद-कृपा मात्र से मुझे मेरे उद्देश्य की प्राप्ति हो जाये तो यह कभी संभव नहीं है।

भक्ति का अर्थ है मन का सरल, कोमल, विनम्र एवं निष्कपट-निष्छल होना। भक्ति का अर्थ है पूर्ण समर्पण, किन्तु समर्पण का अर्थ परावलंबन नहीं है और न रोना-गाना-गिड़गिड़ाना एवं मात्र स्तुति-वंदना करना है। स्तुति-वंदना करने से मन में सात्त्विक भावना आती है, परन्तु उस स्तुति-वंदना में कोई कामना-चाहना नहीं होनी चाहिए। यदि उस स्तुति-वंदना के पीछे कोई कामना-चाहना है तो वह भक्ति न होकर व्यापार है। ज्यादातर स्तुति-वंदना के पीछे कोई न कोई सांसारिक कामना-चाहना छिपी होती है। बिरले कोई होता है जो

सांसारिक कामना-चाहना से रहित होकर मानसिक, निर्मलता, प्रसन्नता और शांति-संतोष के लिए भक्ति करता है। ज्यादातर लोग तो सांसारिक उपलब्धि पाने या दुख-कष्ट के छुटकारा पाने के लिए स्तुति-वंदना करते हैं और मान लेते हैं कि हम भक्ति कर रहे हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा—भक्ति न जाने भक्त कहावै, तजि अमृत विष कैलिन सारा (बीजक, शब्द 32)। अर्थात लोग वास्तविक भक्ति क्या है यह तो जानते नहीं, किन्तु भक्त कहलाना चाहते हैं। इन लोगों ने तो अमृत को छोड़कर विष को ही सार समझकर ग्रहण कर लिया।

यहां स्वाभाविक प्रश्न हो सकता है कि कबीर साहेब को यह क्यों कहना पड़ा कि लोग भक्ति के नाम पर अमृत छोड़कर विष को ग्रहण कर लिये। यह विष और अमृत क्या है? विष है अहंकार, स्वार्थ, कामना-चाहना, देहासक्ति, विषय-वासना, छल-कपट, चतुराई, कुटिलता-क्रूरता, कल्पना-भ्रान्ति और भक्ति के नाम पर पूजा-पाठ, स्तुति-वंदना करते हुए भी अधिकतम लोगों के मन में यही सब भरे हैं, उनके जीवन-आचरण, कर्म-व्यवहार का कोई ठिकाना नहीं है। अमृत है सरलता, विनम्रता, निर्मानता, निष्कामता, निरहंकारता, निस्स्वार्थता, निष्कपटता, निष्छलता, निर्लोभता, बाहर-भीतर एक, ईमानदारी, आत्मभाव, आत्मलीनता, शांति-संतोष, त्यागभाव आदि और अधिकतम लोगों के मन में यह सब नहीं हैं। उनका जीवन इनसे खाली का खाली ही रह गया है। फिर कैसे कहा जाये कि वे भक्ति कर रहे हैं। जिनके जीवन में यह सब है वही सच्चा भक्त है। भक्ति के मर्म को उन्होंने ही समझा है।

पूर्व में कहा गया है कि भक्ति का अर्थ है समर्पण और समर्पण तभी संभव है जब मन में किसी प्रकार का कोई अहंकार और कामना न हो। निरहंकारता और निष्कामता के बिना भक्ति अधूरी रह जाती है। अहंकार किया जाये तो किसका किया जाये। यहां किसका क्या है? सबको खाली हाथ नंगे बदन आना होता है और सब कुछ यहीं छोड़कर खाली हाथ चले जाना है। सब बीच में मिले और बीच में ही छूट गये। व्यवहार चलाने और व्यवस्था करने के लिए कुछ दिनों के लिए कुछ अपना मानना होता है, इसका क्या अहंकार करना। इसमें भी यदि यह दृष्टि-समझ हो कि आज जो कुछ जिसे मैं अपना मान रहा हूं वह मेरा नहीं अपितु प्रभू-परमात्मा का या प्रकृति का है—'जो कुछ आपन मानि जहां लों, सो सब इष्ट का ही दिल गुनलों।' मैं तो केवल ट्रस्टी और व्यवस्थापक मात्र हूं, फिर सब काम बहुत सुंदर और व्यवस्थित ढंग से होगा, किन्तु अहंकार नहीं होगा। अहंकारी आदमी सब कुछ कर सकता है भक्ति या सेवा नहीं कर सकता। वह भक्ति और सेवा के नाम पर जो कुछ करेगा अपने अहंकार-पुष्टि के लिए ही करेगा। भक्ति और अहंकार साथ-साथ नहीं चल सकते। भक्ति अमृत है और अहंकार विष। विष त्यागकर ही अमृतपान किया जा सकता है।

यदि मन में कोई सांसारिक कामना और चाहना है तो सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि किसी प्रकार की सांसारिक कामना रखकर समर्पण नहीं होगा। भक्ति का अर्थ है प्रारब्ध यात्रा में जब जो मिल जाये उसमें पूर्ण संतोष। मानस में नवधा भक्ति का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—'अठवीं यथा लाभ संतोषा।' आठवीं भक्ति है यथालाभ अर्थात जब जो मिले उसमें संतोष। भक्त का अर्थ ही है संतुष्ट व्यक्ति। जो असंतुष्ट है, जिसका मन अनेक इच्छा-कामना से भरा हुआ है वह तो घोर संसारी व्यक्ति है। वह भक्ति को क्या समझ सकता है। वह मंदिरों में या धार्मिक स्थलों में जो दान-दक्षिणा करता या देता है उसके पीछे भी उसकी कोई सांसारिक कामना छिपी होती है। वहां भी वह एक प्रकार का व्यापार कर रहा होता है। इसीलिए कबीर साहेब को कहना पड़ा—भक्ति न जाने भक्त कहावै, तजि अमृत विष कैलिन सारा।

धर्म के क्षेत्र में जितने भी मत-मजहब-संप्रदाय हैं उनमें प्रायः दो विचारधारा हैं। एक तो यह कि भगवान-ईश्वर-खुदा-गॉड हमसे अलग है और दूसरी यह कि भगवान कहीं बाहर-अलग नहीं, किन्तु हमारे अंदर ही

है और वह हमारा अपना स्वरूप, हमारा अस्तित्व ही है। जो भगवान-ईश्वर को अलग मानते हैं वे यह भी मानते हैं कि भगवान-ईश्वर न्यायी, दयालु और सर्वान्तर्यामी है। वह जो कुछ भी करता है न्यायपूर्वक करता है और अपने भक्तों के हित में ही करता है, फिर उससे कुछ मांगने-याचना करने की आवश्यकता ही नहीं है। हमें तो भक्ति अपने मन की निर्मलता, प्रसन्नता और शांति के लिए करना है। भगवान तो सर्वान्तर्यामी है, हमारी जो आवश्यकता है उसे सब कुछ मालूम है। समयानुसार वह हमें सब कुछ दे देगा, उससे मांगने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि भगवान हमारे भीतर हमारा अपना आत्मअस्तित्व ही है तो वहां कुछ मांगने की आवश्यकता ही नहीं है। हमें तो समय-शक्ति अनुसार प्रयत्न-पुरुषार्थ करते रहना है। हमारे प्रारब्ध में जो है वह हमें अवश्य मिलकर ही रहेगा, फिर मांगना क्या! कुल मिलाकर देखें तो निष्कामता के बिना भक्ति सांसारिक व्यापार बनकर ही रह जाती है। जहां कामना-चाहना है वहां भक्ति है ही नहीं। कामना-चाहना में स्वार्थ छिपा रहता है। और यही विष है जो मनुष्य को चैन से रहने नहीं देता।

मनीषियों ने भक्ति के दो स्वरूप बताया है—एक सगुण और दूसरा निर्गुण। सगुण भक्ति की परिभाषा दी गयी—पूज्येष्वनुरागो भक्तिः। पूज्य के प्रति अनुराग होना भक्ति है। अनुराग का अर्थ है—प्रेम, श्रद्धा, निष्ठा, समर्पण। अब प्रश्न है पूज्य कौन है? यदि हमारा पूज्य परोक्ष है, आकाश-पाताल, लोक-लोकान्तर में है तो उससे कभी हमारी मुलाकात हो नहीं सकती। हम उसकी केवल कल्पना कर सकते हैं और उसका एक मानस-चित्र तैयार कर सकते हैं। और जिससे हमारी मुलाकात नहीं हो सकती हम उससे प्रेम कैसे कर सकेंगे। उस मानस-चित्र से न हमें कोई मार्गदर्शन मिलेगा और न हमारी शंकाओं का समाधान होगा। हां, उस मानस-चित्र का स्मरण-चिंतन करते रहने से मन में सात्त्विक भावना आयेगी, संस्कार शुद्ध होंगे और मन में प्रसन्नता बनी रहेगी। परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि परोक्ष कभी पूज्य नहीं हो सकता, पूज्य तो प्रत्यक्ष ही हो सकता है।

प्रत्यक्ष पूज्य के दो रूप हैं—एक किसी महापुरुष के चित्र या मूर्ति के रूप में और दूसरा मनुष्य के रूप में। चित्र या मूर्ति किसी महापुरुष की प्रतिकृति है, उसको देखने से उस महापुरुष के त्याग-तप, साधना-वैराग्य, उज्ज्वल चरित्र, उच्च आदर्श की याद आती है। उस चित्र या मूर्ति को साफ-सुथरा रखना ही उसकी भक्ति है। इसके आगे जो कुछ किया जाता है सब कुछ एक भावुकता है। न उसे भूख-प्यास लगती है और न उसे भोजन-पानी की आवश्यकता है। भोजन-पानी की आवश्यकता सजीव-जानदार को होती है, निर्जीव को नहीं। किसी भी चित्र या मूर्ति की पूजा-अर्चना, स्तुति-वंदना करने से यह सब करने वाले को मानसिक संतोष-प्रसन्नता मिलती है, परन्तु तभी जब यह सब कामना-चाहना से रहित होकर निष्काम भाव से किया जाये। परंतु यह ध्यान रखना होगा कि किसी भी चित्र या मूर्ति की चाहे जितनी पूजा-अर्चना, स्तुति-वंदना क्यों न की जाये उधर से न कोई उत्तर मिलेगा और न आशीर्वाद।

कहा जाता है चित्र या मूर्ति-पूजा भक्ति की प्रथम सीढ़ी है, परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि सीढ़ी की सार्थकता मंजिल तक पहुंचाने में, आत्मज्ञान प्राप्त कर आत्मस्थित होने में है। यदि जिंदगीभर चित्र-मूर्ति की पूजा करने के बाद भी आत्मज्ञान नहीं हुआ, भ्रान्ति दूर होकर आत्मस्थिति नहीं हुई तो कैसे कहा जाये कि चित्र-मूर्ति-पूजा भक्ति की प्रथम सीढ़ी है। यह तो भक्ति के नाम पर भटक जाना हुआ। सामान्य लोगों के लिए चित्र-मूर्ति-पूजा एक सहारा-अवलंबन है, परन्तु विवेक-शील मनुष्य को इससे ऊपर उठना ही होगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी का यह कथन कितना सार्थक है—

तुलसी प्रतिमा पूजबो, जस गुड़िया को खेल।
साँच पति से भेंट भई, दिया पिटारा मेल॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अंतर में विष राखि के, अमृत डारिनि खोय॥

अर्थात भावुक लोगों ने कंकड़-पत्थर धोकर भक्ति का स्वरूप बिगाड़ डाला। उन लोगों ने कल्पना-भ्रांति रूपी विष को रखकर आत्मज्ञान, आत्मस्थितिरूपी अमृत का त्याग कर दिया।

सार यह है कि किसी विवेकी के लिए चित्र-मूर्ति पूज्य नहीं हो सकते। पूज्य तो प्रत्यक्ष सजीव-जानदार ही हो सकता है और वे हैं व्यावहारिक क्षेत्र में माता-पिता तथा पारमार्थिक क्षेत्र में त्याग-वैराग्य संपन्न निर्मल-जीवन संत-सद्गुरु। माता-पिता ने जन्म दिया, पाला-पोसा, लिखाया-पढ़ाया, योग्य बनाया, उनका अनंत उपकार है। इसलिए हर गृहस्थ व्यक्ति के लिए माता-पिता पूज्य हैं। उनकी सेवा करना और उनको आदर-सम्मान देना, उनकी उचित आज्ञा का पालन करना हर गृहस्थ का कर्तव्य है और यही उनके प्रति भक्ति है। परन्तु जीवन का परम उद्देश्य आत्मकल्याण की प्राप्ति के आदर्श एवं मार्गदर्शक त्याग-वैराग्य संपन्न निर्मल जीवन संत-सद्गुरु ही हैं जिनसे हमारी सारी शंकाओं का समाधान होकर आत्म-अनात्म, बंध-मोक्ष, कर्तव्य-अकर्तव्य का सच्चा बोध तो प्राप्त होता ही है, साधना-वैराग्य के पथ पर चलकर आत्मकल्याण-आत्मस्थिति के लिए संबल-सहारा भी मिलता है। इसलिए निर्मल जीवन संत-सद्गुरु ही सच्चे पूज्य हैं और उनके प्रति अनुराग, श्रद्धा, समर्पण, प्रेम रखना, उनके बताये पथ पर चलना, उनके उपदेशों का जीवन में आचरण करना ही सगुण भक्ति है।

सगुण-साकार निर्मल जीवन संत-सद्गुरु की सेवा, आराधना, पूजा सगुण भक्ति है और इस सगुण भक्ति का परिणाम-फल है आत्मज्ञान प्राप्त कर आत्मस्थित होना और यही निर्गुण भक्ति है।

स्वामी शंकराचार्य विवेक चूडामणि में कहते हैं—

मुक्तिकारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते॥

अर्थात मुक्ति की जितनी भी कारण सामग्री है, जिन साधनों से मुक्ति होती है उन सभी में भक्ति अत्यंत वजनदार—श्रेष्ठ है और भक्ति है—स्वस्वरूप का अनुसंधान करना, स्वयं की खोज करना, स्वयं को जानना।

प्रश्न हो सकता है कि स्वयं की खोज क्या करना और उसे क्या जानना! हर आदमी को स्वयं का पता है, खुद का ज्ञान है। यह बात सच होते हुए भी मनुष्य को स्वयं का ज्ञान नहीं है। वह तो शरीर को ही अपना स्वरूप मानता है और शरीर द्वारा इंद्रियों का भोग भोगना जीवन-लक्ष्य, जबकि यही सारे दुख एवं भव-बंधन का कारण है।

पहले यह समझना होगा कि शरीर और जीव (चेतन, आत्मा) दोनों अलग-अलग हैं। शरीर भौतिक तत्त्वों से निर्मित जड़ और अचेतन है तथा ज्ञान-गुण रहित है और जीव भौतिक तत्त्वों से सर्वथा पृथक ज्ञान-गुण संपन्न चेतन है। जड़ कभी चेतन नहीं होगा और चेतन कभी जड़ नहीं होगा। अनादि काल से जड़-शरीर में निवास करते-करते इस चेतन-जीव ने शरीर से तादात्म्य स्थापित कर लिया है और अपने को शरीर मानने लग गया है। शरीर के प्रति इस मैं भाव से ही विषयासक्ति होती है और विषय-सेवन से जगत-वासना पुष्ट होकर आवागमन-जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है।

मैं शरीर को जानता हूं, शरीर मुझे नहीं जानता। मैं निर्मल, निर्विकार, अजर-अमर-अविनाशी चेतन हूं और शरीर मलिन, गंदगी का आकर, विकारी, मरण-धर्मा तथा नाशवान है ऐसा जानकर देहभाव, देहासक्ति, देहाभिमान का त्यागकर मन को आत्मलीन कर देना स्वस्वरूप का अनुसंधान करना है।

स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

अस्ति कश्चित् स्वयंनित्यः अहंप्रत्यय लंबनः।
अवस्था त्रय साक्षी सन् पञ्चकोश विलक्षणः॥

(विवेक चूडामणि)

अर्थात—मैं बोध का आधार कोई एक स्वयं नित्यसत्ता है, जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी तथा पांचों कोशों से सर्वथा विलक्षण है।

तीनों अवस्थाओं का साक्षी ज्ञानस्वरूप यह चेतन-जीव ही आदि-अंत रहित स्वयं नित्य सत्तावान है। यही सारे ज्ञान-विज्ञान का आधार तथा सभी प्रमाणों का प्रमाता है। यह जीव-चेतन-आत्मा न हो तो कौन किसको प्रमाणित करेगा। सारे देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा, स्वर्ग-नरक आदि सबको प्रमाणित करने वाला यह चेतन-जीव ही तो है। परन्तु स्वरूप-भूलवश यह अपने लक्ष्य को बाहर खोज रहा है। जब यह बाहर से घूमकर शांत होकर यह सोचेगा कि मैं कौन हूं जो ईश्वर-ब्रह्म को खोज रहा हूं तब उसे मालूम होगा कि वह मैं ही तो हूं। यदि मैं ही न होता तो ईश्वर-ब्रह्म, मुक्ति-गति को कौन खोजता। ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा की आवश्यकता किसको है? मुझे ही तो। तो फिर मैं कौन हूं। इस प्रकार चिंतन करना ही स्वस्वरूप का अनुसंधान करना है।

इस अनुसंधान से ही स्वस्वरूप का निर्भ्रान्त बोध होगा और स्वरूपबोधपूर्वक साधना-वैराग्य द्वारा जब सारी विषयासक्ति का त्याग हो जायेगा तब स्वरूपस्थिति-स्वरूपलीनता होगी और यह स्वरूपस्थिति-स्वरूप-लीनता ही वास्तविक भक्ति है। यह किसी मत-मजहब-संप्रदाय की बात नहीं है और न ही यह किसी कर्मकांड का फल है। यह दशा तो मत-मजहब-संप्रदायजनित सारे आग्रहों एवं पक्षपात से रहित होने पर ही आती है। यह तो पूर्ण निष्पक्षता, निरहंकारता एवं निष्कामता का फल है। सब तरफ से पूर्ण निष्पक्ष-निर्द्वन्द्व हो जाना ही सच्ची भक्ति है और इस भक्ति में सच्चा ज्ञान समाहित है। इसलिए कहा गया है—

निर्पक्षी को भक्ति है, निर्द्वन्द्वी को ज्ञान।
निर्मोही को मुक्ति है, निर्लोभी निर्बान॥

—धर्मेन्द्र दास

ये देह गेह हैं नहीं तुम्हारे

रचयिता—हेमंत हरिलाल साहू

ये देह गेह हैं नहीं तुम्हारे
इनका नहीं ठौर ठिकाना है
छोड़ चला दादा परदादा
इक दिन छोड़ के सबको जाना है॥

खोई बालापन की सहज सरलता
औ मित्र मंडली की टोली
खोई जवानी की रूप लावण्यता
कहां गयी वो हंसी ठिठोली
बुढ़ापा है परवशता जीवन
खाट पड़े पछताना है॥1॥

फिर भी काम ऐसा करते
जीवन भर कहते मेरा-मेरा
सुखी कौन है इस जहां में
आशा तृष्णा है मन घेरा
सुख का यहां लवलेश नहीं है
सुख आश पड़े दुख पाना है॥2॥

घर दुआरी खेती बाड़ी
जिन पुरखों की थाती है
मोर-मोर कहि हार थके सब
ये माया साथ ना काहू के जाती है
हुआ ना कभी, ये वसुधा किसी का
फिर भी तू बना दिवाना है॥3॥

रावण छोड़ चले लंका को
अवध छुटे रघुराई के
कंस छोड़ चले मथुरा नगरी
छुटे गोप ग्वाल कन्हाई के
ये भी छुटेंगे वो भी छुटेंगे
जिसको तू दिल से अपना माना है॥4॥

ज्ञानी गुणी ध्यानी कवि कोविद
कोई राजा रंक फकीर हो
जाना इक दिन सबका है पक्का
चाहे ज्ञानहीन मतिधीर हो
हेमंत अचल अकाम मुक्ति लहि
जीते जी ही तर जाना है॥5॥

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

(काम, कारण और निवारण)

लेखक—श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट

'ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत।'

ब्रह्मचर्य से क्या नहीं हो सकता?

उससे मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

जीवन में सर्वत्र सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उससे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

बल की वृद्धि होती है।

ओज की प्राप्ति होती है।

× × ×

कौन नहीं जानता ब्रह्मचर्य से होनेवाले लाभों को?

फिर भी हम ब्रह्मचर्य के पालन के लिए सचेष्ट नहीं होते। उसकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील नहीं होते।

महज इसलिए कि विषयों में हमने सुख की, आनन्द की कल्पना जो कर रखी है।

गीता का यह उपदेश हमने सर्वथा भुला दिया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (5।22)

स्पर्श से, विषयों से, इन्द्रियों के संयोग से प्राप्त होनेवाले भोग दुःख के ही हेतु हैं। आदि और अन्तवाले हैं, अनित्य हैं। बुद्धिमान् पुरुष उनमें नहीं रमते।

पर, यहां तो कुएं में भांग जो पड़ी है।

× × ×

हमने बुद्धि को उठाकर ताक पर रख दिया है। जानते हैं, विषयों में क्षणभर के लिए दाद खुजलाने का आनन्द मिलता है और जिन्दगीभर के लिए मुसीबत में फंस जाना पड़ता है, रोग-बीमारी, झंझट-परेशानी, दुःख-क्लेश, कलह-अशान्ति सदा के लिए घेर लेती है, फिर भी हम हैं कि मानते ही नहीं!

× × ×

दुःखों को हम जान-बूझकर आमन्त्रित करते हैं। ठोंक-बजाकर मुसीबत मोल लेते हैं। और जब, दुःखों और कष्टों में फंस जाते हैं तो रोते हैं, सिर धुनते हैं और हाथ मलते हैं।

पर—

तब पछिताये होत का, जब चिड़िया चुग गयी खेत।
माखी बैठी शहद पर पंख गये लपिटाय।
हाथ मले अरु सिर धुने लालच बुरी बलाय॥

× × ×

जरूरत है कि हम शुरू से सचेत रहें।

क्षणिक सुखों के प्रलोभन से अपने को रोकें।

इन्द्रियां जैसे ही भटकने के लिए आतुर हों, वैसे ही उनपर 'ब्रेक' लगा दें।

कछुए की तरह जरा-सा खटका होते ही, संकट की जरा-सी आशंका होते ही हम शरीर को समेट लें।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता 2।58)

× × ×

सभी इन्द्रियों के विषयों में हमें सावधान होना पड़ेगा।

जरा ढील दी कि गये!

× × ×

अपवित्र विचार आता है, बढ़ता-पनपता है, पुष्पित-पल्लवित होता है, भोग्य प्राणी के प्रति आकर्षण इतना अधिक बढ़ जाता है कि मानव की बुद्धि दिवाला बोल जाती है। वह रोक नहीं पाता अपने आपको।

इन्द्रियां उत्तेजित हो उठती हैं। स्पर्श की, भोग की आकुलता इतनी बढ़ती है कि उसकी समाप्ति होती है वीर्य और रज के स्खलन में ।

और, यह वीर्य और रज क्या है?

यह है वह अलभ्य पदार्थ, जिससे प्रजोत्पत्ति होती है।

पुरुष का चेहरा इसी से दमकता है।

इसी से उसके रोम-रोम में स्फूर्ति रहती है। यही उसका बल है, यही उसकी शक्ति है, यही उसका ओजस् है।

नारी का लावण्य, उसकी लोनाई, उसका नमक, उसका सलोनापन यही है।

सृष्टि का चक्र इसी से चलता है।

माताओं की गोद इसी से हरी-भरी होती है।

आंगन की खिलखिलाहट का रहस्य इसी में छिपा हुआ है।

× × ×

वीर्य ही वह संजीवनी शक्ति है, जिस पर मानव के शरीर का सारा ढांचा खड़ा है।

आयुर्वेद कहता है कि रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य ये सात धातुएं स्वयं स्थित रहकर मानव शरीर को धारण करती हैं।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यत्नृणाम्।
रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः॥

× × ×

जानते हैं, वीर्य कितनी मूल्यवान् वस्तु है?

सुश्रुत में उसकी व्याख्या की गयी है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥

हम जो भोजन करते हैं, उससे सबसे पहले रस बनता है। कूड़ा मल-मूत्र पसीना आदि के रूप में बाहर निकल जाता है।

रस से रक्त बनता है। रक्त से मांस बनता है।

मांस से मेद और मेद से अस्थि बनती है।

अस्थि से मज्जा बनती है। मज्जा से वीर्य बनता है।

× × ×

एक धातु से दूसरी धातु बनने में 5 दिन लगते हैं। 6 धातुओं के बनने में 6×5=30 दिन लगते हैं।

अर्थात् हम आज जो खायेंगे, वह एक महीने बाद वीर्य का रूप धारण करेगा।

सो भी किस हिसाब से?

पक्का 1 मन=40 सेर भोजन=1 सेर रक्त=2 तोला वीर्य!

हम रोज यदि 1 सेर भोजन करें, तो तीस दिन में मुश्किल से डेढ़ तोला वीर्य तैयार होगा।

× × ×

जो वीर्य इतना मूल्यवान् है, उसी की बर्बादी में हम कैसे शाहखर्च हैं, सोचकर आश्चर्य होता है!

एक बार के सहवास में डेढ़ तोले से कम वीर्य का क्षरण नहीं होता। मतलब, एक बार के सम्भोग में महीनेभर की कमाई गोल!

× × ×

बापू के शब्दों में हम पलभर के लिए भी नहीं सोचते कि क्षणिक रस के लिए मैं क्यों तेजहीन होऊं? जिस वीर्य में प्रजोत्पत्ति की शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यों होने दूं? और इस तरह ईश्वर की दी हुई बख्शीश का दुरुपयोग कर के मैं ईश्वर का चोर क्यों बनूं? जिस वीर्य का संग्रहकर मैं वीर्यवान् बन सकता हूं, उसका पतन कर के वीर्यहीन क्यों बनूं?'

× × ×

कहा गया है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

मक्खन निकालने के लिए जिस तरह दूध मथा जाता है, ईख से रस निकालने के लिए जिस तरह ईख को निचोड़ना पड़ता है, उसी तरह विन्दुपात के लिए सारे शरीर को मथ डाला जाता है। तभी तो वीर्य के क्षरण के उपरान्त शरीर की सभी नस-नाड़ियां शिथिल हो जाती हैं। लगता है शरीर में अब कोई दम नहीं रह गया है।

चाणक्य ने इसीलिए लिखा है—

पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात् को न मुच्येत बन्धनात्॥

'पुराण सुनने के बाद, श्मशान से लौटने के बाद और मैथुन करने के उपरान्त जो बुद्धि रहती है, वह यदि सदैव बनी रहे, तो कौन न बन्धन से मुक्त हो जाये!'

× × ×

विषयवासना से हमारी अक्ल पर पर्दा पड़ जाता है। तभी न हम बार-बार गिरकर और पछता-पछताकर फिर भी गिरते ही चले जाते हैं।

× × ×

आज हमारा राष्ट्र इतना दुर्बल है, अशक्त है, कमजोर है, क्षय-जैसे भयंकर रोगों का शिकार है, क्यों?

जवानी में ही हमारी आंखें गढ़ों में धंस जाती हैं, गाल पिचक जाते हैं, युवतियां एकाध बच्चे को ही जन्म देने के बाद वृद्धा बन जाती हैं, बच्चे अकाल ही काल के गाल में समा जाते हैं—इसका कारण क्या है?

यही कि हम वासना के कीड़े बन गये हैं। भोग-विलास के पीछे दीवाने बने घूमते हैं। वीर्यनाश के नाना उपायों द्वारा अपने को निचोड़ डालने में ही हमने अपने जीवन की सार्थकता मान ली है। क्षणिक सुख के लिए अपना सर्वनाश करने में ही हमें 'मजा' आता है।

और, यह 'मजा' ही हमें ले डूबता है।

नतीजा सामने है।

हमारा स्वास्थ्य चौपट हो रहा है, हमारा चरित्र स्वाहा हो रहा है, धन नष्ट हो रहा है और हम विवश हो रहे हैं—कीड़ों-मकोड़ों से भी गया-गुजरा जीवन बिताने के लिए!

× × ×

इसी से बचाने के लिए हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य पालनपर इतना जोर दिया गया है। अष्ट प्रकार के मैथुन से बचने के लिए इसीलिए कहा गया है कि उसी में मानवजाति का कल्याण निहित है। उसका विवेचन भी कितना सूक्ष्म है, देखिये—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

स्मरण—पतन की पहली सीढ़ी है—अपवित्र स्मरण। काम का चिन्तन, गन्दी बातों का स्मरण जहां किया कि पाप का पथ प्रशस्त हुआ। पतन की शुरुआत यहीं से होती है।

कीर्तन—गन्दे विषयों की चर्चा करना, मुख से गन्दी-अश्लील बातें निकालना, विकारोत्तेजक गीत गाना, गन्दा-अश्लील साहित्य पढ़ना, विषयवार्ता में रस लेना भी पतन का एक प्रकार है।

केलि—कामवासना से केलि (क्रीड़ा) करना, हंसना, गुदगुदाना, अंगों का स्पर्श करना, ताश-चौपड़ आदि खेलना भी पतन का एक प्रकार है।

प्रेक्षण—कामासक्त होकर किसी को टेढ़ी-तिरछी नजरों से देखना, किसी को अस्त-व्यस्त रूप में, नग्न अथवा अर्धनग्न अवस्था में स्नान करते हुए, बाल झाड़ते हुए देखना, गन्दे चित्र, नाटक, सिनेमा, नौटंकी आदि देखना, उसमें रस लेना भी पतन का एक प्रकार है।

गुह्यभाषण—एकान्त में, पतन विषयक गुप्त और रहस्यपूर्ण बातें करना भी पतन का एक प्रकार है।

संकल्प—अपवित्र संकल्प करना, कामवासना चरितार्थ करने का विचार करना भी पतन का एक प्रकार है।

अध्यवसाय—पतन के लिए प्रयत्नशील होना, उसके लिए आगे बढ़ना, वासनापूर्ति के लिए भांति-भांति की चेष्टाएं करना भी पतन का एक प्रकार है।

क्रियानिष्पत्ति—इन्द्रियों के हाथ का खिलौना बनकर पतन के गड्ढे में गिर जाना पतन की पराकाष्ठा है। पिछले सभी प्रकारों की अन्तिम परिणति इसी में होती है।

× × ×

पुरुष हो या स्त्री, युवक हो या युवती, किशोर हो या किशोरी जो भी व्यक्ति पतन के इन आठ प्रकारों में से एक भी प्रकार में रस लेता है, वह अपने पतन का पथ प्रशस्त करता है।

ये सभी साधन गिरानेवाले हैं, वीर्यनाश करनेवाले हैं। इनसे शक्ति का क्षय होता है, रोग और बीमारियां

पनपती हैं, शरीर खोखला होता है, धन-सम्पति नष्ट होती है, स्वास्थ्य चौपट होता है, चरित्र स्वाहा होता है, सम्मान जाता है, अपमान और तिरस्कार होता है।

इनसे व्यक्ति का पतन होता है, समाज का पतन होता है, राष्ट्र का पतन होता है।

और क्या नहीं होता?

कामवासना के चलते कितना नहीं जलील होना पड़ता मानव को।

× × ×

और कहीं छुटकारा भी है इस बला से?

घर तो घर, बाहर सड़कपर, मैदान में, बाग-बगीचे में, यहां तक कि जेल में भी वह हमारा साथ नहीं छोड़ती।

कैद जिंदा में न छोड़ा साथ,
नफ्स मूज़ी भी बड़ा बदज़ात है।

× × ×

आज तो हमारे चारों ओर भोग-विलास का ही गन्दा पनाला बह रहा है। जिधर देखिये अपवित्र वातावरण, अपवित्र क्रियाकलाप, अपवित्र वार्ता, अपवित्र साहित्य, अपवित्र मनोविनोद। सर्वत्र दूषित विकारों की ही आराधना। पतन के न जाने कितने घृणित मार्ग खोज निकाले हैं हमने।

तभी तो मर्यादित सहवास की बात हमें काटती है। वह हमें असम्भव-सी लगती है। घर की मर्दुमशुमारी बढ़ते देख, बच्चों के लालन-पालन में अपनी असमर्थता देख हम सन्तति-निग्रह के बनावटी उपायों की ओर बेतहाश दौड़ रहे हैं।

वासना पर काबू करना हमसे पार नहीं लगता, पर उसके कटु परिणामों से बचने के लिए, बच्चों से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए, जिम्मेदारियों से बचने के लिए हम जमीन-आसमान के कुलावे एक में मिला रहे हैं।

कैसा घृणित है हमारा यह सारा आयोजन।

× × ×

हमारा मनोविज्ञान आग में घी का काम कर रहा है!

वह कहता है—भोगों की इच्छाओं को जबरन दबाना ठीक नहीं। उससे मानसिक रोग पनपते हैं। हीनता की भावना आती है। स्नायुदौर्बल्य आता है। मानव के विकास का रास्ता रुक जाता है। हृदय में ऐसी ग्रन्थियां पड़ जाती हैं कि मानव झेंपने लगता है, शर्माने लगता है। काम करने की उसकी स्फूर्ति मारी जाती है। ऐसी एक नहीं, अनेक बातें।

× × ×

ऐसा नहीं कि मनोविज्ञान की ये सब बातें बिना तथ्य की हों।

उसने अनेक प्रयोग कर के दिखा दिया है कि अवदमित वासनाएं ही विभिन्न विकृत रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं।

× × ×

यह मनोविज्ञान भोगों को इतना भोगने की छूट देता है कि भोगते-भोगते उनसे अरुचि हो जाये।

परंतु क्या ऐसा सम्भव है?

हम तो यही समझते हैं कि—

'बुझे न काम अगिनि 'तुलसी' कहूँ, विषय-भोग बहु घी ते।'

× × ×

कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ ध्यान करने बैठते तो उनके ध्यान में सेव आ जाता।

बड़े हैरान। जब देखो तब सेव!

एक दिन वे बाजार से एक सेव ले आये और उसे रख दिया अपने सामनेवाले ताक में ।

शीघ्र बिगड़नेवाला फल धीरे-धीरे उसका रंग-रूप विकृत होने लगा।

कुछ दिनों में वह सड़ गया। बदबू आने लगी उससे। तब स्वामी राम ने उसे उठाकर फेंक दिया। फिर कभी सेव उनके ध्यान में नहीं आया।

× × ×

भोगों को भोगकर उनसे अरुचि हो जाने की बात सबपर लागू नहीं हो सकती।

हो भी, तो सब लोग मनोऽनुकूल भोग पा कहां से सकेंगे?

अजी, सबकी बात तो छोड़िये, ययाति के अनुसार, सारे संसार की सम्पत्ति, सारे संसार की सुन्दरियां एक व्यक्ति के पास लाकर जुटा दी जायें, फिर भी यह कहना कठिन है कि उस व्यक्ति की तृप्ति हो जायेगी।

× × ×

पैर कब्र में लटक रहे हैं, शरीर जर्जर है, हाथ उठते नहीं, आंखों से सूझता नहीं, कानों से ठीक सुन नहीं पड़ता, सभी अंग जवाब दे चुके हैं—ऐसे वृद्धों में भी विकार जाग्रत् होते देखा गया है! जिन्दगीभर भोग भोग चुके हैं, फिर भी उनसे अरुचि का कोई नाम नहीं! सुलभ हो और मकरध्वज तथा तिलामस्ताना उनकी नसों में रवानी ला सके, तो वे उसका भी उपभोग करने से नहीं चूकेंगे।

मुसकराकर कह उठेंगे—'शरीर बूढ़ा हो गया तो क्या दिल भी बूढ़ा हो गया!'

लाख कोई समझाये
'कदम सूए मरकद नजर सूए दुनिया,
कहां जा रहे हो, किधर देखते हो!'
हम पर कोई असर होनेवाला नहीं।

× × ×

मतलब, जबतक विषयों में आसक्ति बनी है, भोगों की वासना जीवित है, तबतक बूढ़ा हो या जवान, अपवित्र विचार घेरेंगे ही।

× × ×

माथा मुड़ा लेने से, कपड़े रंग लेने से, घर-बार छोड़ देने से, परिग्रह से छुटकारा ले लेने से, धर्मोपदेशक, कथावाचक, साधु-संन्यासी, मुल्ला-पादरी का चोगा पहन लेने से विषयों की वासना जाती रहेगी—ऐसा सोचना भी गलत है।

'मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा!'—वाली स्थिति जबतक बनी है, तबतक पतन का खतरा बना ही रहेगा।

× × ×

विनोबा ने ठीक ही कहा है—

'कोई यदि गुफा में जाकर बैठ जाये, तो भी उसकी बित्तेभर लंगोटी में संसार ओत-प्रोत (भरा) रहता है। यह लंगोटी उसकी ममता का सार-सर्वस्व बन बैठती है। जैसे छोटे से नोट में हजार रुपये भरे रहते हैं, वैसे ही उस छोटी-सी लंगोटी में भी अपार आसक्ति भरी रहती है। चाहे घर में रहो या जंगल में आसक्ति तो पास ही बनी रहती है।'

जरूरत है इस आसक्ति को मिटाने की।

फिर चाहे घर में रहो, चाहे वन में, गृहस्थ रहो या संन्यासी—सब ठीक है।

अपवित्र विचार तभीतक आते हैं, जबतक यह आसक्ति बनी हुई है। यह मिट जाये तो अपवित्र विचार आ ही नहीं सकते। अपवित्र विचारों से मुक्त होने के लिए, जीवन और जगत में सफलता पाने के लिए, सुखी और स्वस्थ रहने के लिए, अपना, राष्ट्र का और विश्व का कल्याण करने के लिए हमें अपने स्वेच्छाचार पर रोक लगानी होगी और ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर पूरी सावधानी से उसका पालन करना होगा।

ब्रह्मचर्य का पालन करने में हम इसीलिए असमर्थ रहते हैं कि हम हृदय से उसका पालन नहीं करना चाहते। हम चाहें तो क्या नहीं कर सकते? बापू ने ठीक लिखा है—

'व्रत बन्धन नहीं, स्वतन्त्रता का द्वार है। व्रत से अपने को बांधना मानो व्यभिचार से छूटकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है।

'मेरा तो विश्वास प्रयत्न में है। व्रत के द्वारा मैं बंधना नहीं चाहता—यह वचन निर्बलतासूचक है। इसमें छिपे-छिपे भोग की इच्छा रहती है। जो वस्तु त्याज्य है, उसे सर्वथा छोड़ देने में कौन-सी हानि हो सकती है? जो सांप मुझे डंसनेवाला है, उसे मैं निश्चयपूर्वक हटा देता हूं, हटाने की केवल चेष्टा ही नहीं करता; क्योंकि मैं जानता हूं कि महज प्रयत्न का परिणाम होनेवाला है—मृत्यु।'

ब्रह्मचर्य का व्रत लिया नहीं, कि अपवित्र विचारों से छुटकारा मिला।

(कल्याण, अप्रैल 2022 अंक से साभार)

व्यवहार वीथी

सास-बहू के बीच में

एक लड़की की शादी होने वाली थी। वह अपनी जन्मकुंडली लेकर एक ज्योतिषी के पास जाती है और उससे कहती है कि पंडित जी! जरा मेरी जन्मकुंडली देखकर बताइये कि मुझे कैसी ससुराल मिलेगी? उसकी जन्मकुंडली देखकर ज्योतिषी ने कहा कि बेटी! तुम्हारी जन्मकुंडली कहती है कि तुम्हें बहुत सुंदर पति मिलेगा और जीवनभर तुम्हारा उससे बहुत सुंदर तालमेल बना रहेगा। ज्योतिषी की बात सुनकर लड़की ने कहा—मैं यह नहीं जानना चाहती कि पति से मेरा तालमेल कैसा रहेगा। उनसे तो मैं तालमेल बिठा ही लूंगी। मैं तो यह जानना चाहती हूं कि सासु मां से मेरा तालमेल कैसा रहेगा। उनसे तालमेल बैठ पायेगा या नहीं?

शादी के बाद हर लड़की बहू बनकर ससुराल जाती है और हर लड़की के मन में यही इच्छा रहती है कि उसे ऐसी सास मिले जो मेरी छोटी-मोटी गलतियों को नजरअंदाज कर मुझे अपनी बेटी मानकर बेटी के समान ही स्नेह-प्यार दे। दूसरी तरफ हर सास यही चाहती है कि मुझे ऐसी बहू मिले जो मेरी डांट-फटकार को चुपचाप सहनकर मुझे मां माने और मां के समान ही मेरी सेवा करे, मेरा आदर-सत्कार करे। परंतु ऐसा बानक बहुत कम बन पाता है। अधिकतम बहुएं अपनी सास को सासु मां या मां तो कहती हैं, परंतु मां के समान आदर नहीं देतीं और दूसरी तरफ हर सास यह तो चाहती है कि मेरी बहू या बहुएं मुझे मां के समान आदर दे, मेरी सेवा करे, किन्तु वह खुद अपनी बहू या बहुओं को अपनी बेटी के समान स्नेह-प्यार नहीं दे पाती। जिस घर-परिवार में सास-बहू के बीच निश्छल मां-बेटी के समान संबंध-व्यवहार हो जाता है उस घर-परिवार का माहौल सबके लिए आनंददायक हो जाता है।

हर मां यही चाहती है कि उसकी बेटी ब्याह कर जिस घर में जाये वहां उसकी सास उसे अपनी बेटी के समान स्नेह-प्यार तो दे ही मेरा दामाद भी मेरी बेटी की हर बात माने और उसकी हर इच्छा को पूरा करे, साथ ही उसी का होकर रहे, परंतु ऐसी सोच रखने वाली मां अपनी बहू को बेटी के समान स्नेह-प्यार नहीं देती और यही चाहती है कि मेरा बेटा बहू की बात न मानकर हमारी बातें माने। जब उसका बेटा अपनी पत्नी की तरफदारी करता है, उसका पक्ष लेता है तब वह कहती है कि बेटा तो जोरू का गुलाम बनकर रह गया है और जब उसका दामाद उसकी बेटी का पक्ष लेता है, उस पर ज्यादा ध्यान देता है तब कहती है कि मेरी बेटी को बहुत सुंदर पति मिला है जो उसका बहुत ख्याल रखता है। यही दोहरी मानसिकता घर-परिवार में कलह का कारण बनती है।

जब कोई बहू किसी बात पर अपनी सास से तर्क करती है या बहू से छोटी-मोटी कोई गलती हो जाती है या कोई चीज टूट जाती है, कुछ नुकसान हो जाता है तब सास बहू को पता नहीं क्या-क्या सुनाती है, यहां तक बहू के माता-पिता के लिए भी कितने गलत शब्दों का प्रयोग करती है, परंतु वही अपनी बेटी को सीख देती है कि देख, तू ससुराल में किसी से दबकर न रहना, कोई तुम्हें एक बात कहे तो तू चार बातें सुनाना। अपनी बेटी को ऐसी सीख देने वाली मां न तो अच्छी मां बन पाती है और न अच्छी सास बन पाती है। फलतः बुढ़ापा में कोई उसका साथ नहीं देता और उसका बुढ़ापा दुखद हो जाता है। ऐसी मां अपनी बेटी के जीवन के साथ-साथ उसके घर-परिवार के वातावरण को अत्यंत कलहपूर्ण-दुखद बनाकर रख देती है। हर मां का यह कर्तव्य है कि वह अपनी बेटी को सही सीख दे और हर सास का कर्तव्य है कि बहू की छोटी-मोटी गलतियों को नजरअंदाज कर उसे पुत्रीवत स्नेह-प्यार दे।

एक नई बहू रसोईघर में काम कर रही थी। काम करते-करते उसके हाथ से छूटकर कांच का गिलास

नीचे गिरकर टूट गया। वह तो एकदम घबड़ा गयी कि अब तो खूब डांट पड़ेगी। गिलास के गिरने की आवाज सुनकर उसकी सास रसोईघर में आती है और गिलास के टूटे टुकड़ों को देखकर बहू से पूछती है—बेटी, तुम्हें चोट तो नहीं लगी या कांच के टुकड़े तुम्हारे पैरों में तो नहीं गड़े? सास की बात सुनकर बहू कहती है—नहीं मां! न तो चोट लगी और न कांच के टुकड़े पैरों में गड़े, परंतु कीमती गिलास टूटने से नुकसान हो गया। सास ने कहा—नुकसान की चिंता मत कर, एक गिलास ही तो टूटा, दूसरा नया गिलास आ जायेगा। खुशी इस बात की है कि तुम्हें चोट नहीं लगी।

रात को सब काम निपटाने के बाद बहू अपनी मां को फोन करके बताती है कि आज रसोईघर में काम करते समय कांच का एक गिलास हाथ से छूटकर गिरकर टूट गया। बेटी की बात सुनकर उसकी मां ने कहा—इस बात को लेकर तुम्हारी सास ने जब तुमसे झगड़ा किया होगा तब तुमने भी उसे ठीक से सुनाया कि नहीं? देखना, डरना-दबना नहीं। बराबर जवाब देना, चुप न रहना। मां की बातें सुनकर बेटी ने चिल्लाकर कहा—मां! बंद कर अपनी बातें। मुझे तुम्हारी ऐसी बातों की जरूरत नहीं है। न तो मेरी सास ने मुझे डांटा और न कुछ कहा, किन्तु उनसे मुझे जो प्यार मिला, उसे पाकर मैं गदगद हूं। मां, यदि यही प्यार आप भाभी को दी होती, तो भैया-भाभी आपसे अलग नहीं होते। भाभी बहुत अच्छे स्वभाव की है, परंतु उनकी छोटी-छोटी गलतियों को लेकर आप रात-दिन भाभी से लड़ती-झगड़ती रहती थी, इसलिए भैया-भाभी को आपसे अलग होना पड़ा और आपको इस बुढ़ापा में भी घर का सारा काम करना पड़ रहा है। आप न तो अच्छी मां बन पायी और न अच्छी सास। बेटी की बातें सुन कर मां ने कहा—बेटी, अब बस कर। तुम्हारी बातों ने मेरी आंखें खोल दी। मुझे मेरी गलती समझ में आ गयी। अब तू सो जा। मुझे भी सुबह घर में तेरे भैया-भाभी के स्वागत की तैयारी करना है। अगली बार जब तू मायके आयेगी तब तुम्हें घर का माहौल पूरी तरह से बदला हुआ नजर आयेगा। मां की बात सुनकर बेटी की आंखों में खुशी के आंसू आ गये।

न तो हर सास गलत होती है और न हर बहू गलत होती है। आज भी अनेक ऐसे घर हैं जहां सास-बहू में मां-बेटी का रिश्ता है। दोनों के बीच सुंदर समन्वय एवं तालमेल है। दोनों एक दूसरे की छोटी-मोटी गलतियों को नजरअंदाज कर एक दूसरे की भावनाओं-इच्छाओं को समझती हैं और एक-दूसरे की भावनाओं-इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करती हैं, साथ ही मिल-जुलकर काम करती हैं। कई वर्ष पहले की बात है एक देवी बता रही थी कि हम सास-बहू में परस्पर मां-बेटी के समान इतनी घनिष्ठता है और इतना सुंदर व्यवहार है कि कई बार मेरे कपड़े-गहने बहू पहन लेती है और बहू के कपड़े-गहने मैं पहन लेती हूं। इतना ही नहीं, जब कभी मुझसे कोई गलती हो जाती है, कुछ नुकसान हो जाता है और घर के लोग उसके लिए मुझे कुछ कहते हैं तो बहू कह देती है कि यह गलती मां की नहीं मेरी है, मुझसे यह नुकसान हुआ है और यही मैं भी करती हूं बहू की गलती की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लेती हूं। सहज समझा जा सकता है कि ऐसे घर-परिवार का वातावरण कितना सुंदर होगा और ऐसे घर में पैदा होने वाले बच्चों को कितना सुंदर संस्कार मिलेगा।

एक घर में पुत्र की शादी के बाद नई बहू आयी तो एक माह बाद उसकी सास उसे लेकर एक मंदिर में गयी और उससे कही—बहू! जब मैं ब्याह कर इस घर में आयी थी तो उसके एक माह बाद मेरी सास मुझे लेकर इसी मंदिर में आयी थी और उस दिन उसने मुझसे कहा था कि बहू! आज से न तू मेरी बहू है और न मैं तेरी सास हूं। आज से मेरे-तेरे बीच सास-बहू का रिश्ता सदैव के लिए खत्म होता है। आज मेरी सास इस दुनिया में नहीं रह गयी है, परंतु उसने जो परंपरा चलायी थी मैं भी उस परंपरा को आगे कायम रखना चाहती हूं। इसलिए मैं आज इस मंदिर में भगवान के सामने कसम खाकर कहती हूं कि आज से न तू मेरी बहू है और न मैं तेरी सास हूं। मेरे-तेरे बीच सास-बहू का रिश्ता सदैव

के लिए मैं समाप्त करती हूं। सास की इन बातों को सुनकर बहू स्तब्ध रह जाती है। वह सोचती है कि हे भगवान, अभी तो इस घर में आये एक माह ही हुआ है और अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा? यह सोचकर उसे चक्कर आने लगता है तब उसकी सास उसे संभालती है और कहती है—बहू! अभी बात पूरी नहीं हुई है। तुम्हें हमारे घर में आये एक माह हुआ है और मेरे-तेरे बीच सास-बहू का रिश्ता रहा है, जिसे मैंने आज इस मंदिर में भगवान के सामने समाप्त कर दिया। आगे आज और अभी इसी क्षण से मैं तेरी मां हूं और तू मेरी बेटी है। हमारे-तुम्हारे बीच अब जीवन-भर मां-बेटी का ही रिश्ता रहेगा। सास की यह बात सुनकर बहू की आंखों में खुशी के आंसू आ जाते हैं और वह अपनी अब तक की सास और आगे की मां से लिपट जाती है।

जो आज सास है वह भी कभी किसी सास की बहू बनकर आयी थी। यदि उसको अपनी सास से बहुत कटु और दुखद व्यवहार मिला है तो वह उसका बदला अपनी बहू से न ले। नहीं तो, तुम्हारा बुढ़ापा अत्यंत कष्टप्रद हो जायेगा। जरा सोचो, क्या अपनी सास से कटु व्यवहार पाकर तुम्हारे मन में उसके लिए आदर-सम्मान का भाव रहा है और उसके बुढ़ापा में क्या तुम प्रसन्नतापूर्वक अपनी सास की सेवा कर पायी हो? यदि नहीं, तो फिर तुम अपनी बहू के साथ वैसा ही कटु व्यवहार क्यों कर रही हो, जैसा तुम्हारी सास ने तुम्हारे साथ किया था। बल्कि तुम्हें तो उससे सीख लेकर अपनी बहू के साथ सुंदर मधुर व्यवहार करना चाहिए, जिससे तुम्हारे बुढ़ापा में तुम्हें अपनी बहू से भरपूर सेवा मिल सके। यह बात एक सच्ची घटना से अच्छी तरह समझी जा सकती है।

शादी के बाद एक लड़की जब बहू बनकर ससुराल आयी तब उसकी सास ने उसे अपनी सगी बेटी के समान प्यार-स्नेह दिया। वह अपनी बहू को खूब खुश रखने की कोशिश करती और उसकी हर सुख-सुविधा का ख्याल रखती। धीरे-धीरे सास बूढ़ी होने लगी तब तक बहू के दो बच्चे हो गये। एक दिन सास फिसलकर गिर गयी और उसकी कमर की हड्डी टूट गयी। वह बिस्तर पर ही लेटी रहती और उसका खाना-पीना, मल-मूत्र सब कुछ बिस्तर पर ही होने लगा। बहू बड़े प्रेम से अपनी सास की सेवा करती। सास की बीमारी के कारण बहू दो-तीन साल मायके नहीं जा पायी। उसकी मां जब उसे फोन करके बुलाती तब वह कहती कि सासु मां को इस हालत में छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकती। बार-बार बुलाने पर भी जब बेटी मायके नहीं गयी तब उसकी मां उससे मिलने और अपनी बीमार समधन को देखने बेटी के घर आती है। वहां दो-तीन दिन रहने पर उसने देखा कि उसकी बेटी अपनी सास की सेवा छोटे बच्चे की सेवा के समान बड़े प्रेम और प्रसन्नता से कर रही है, उसमें कहीं कोई कमी नहीं रहने देती, तब एक दिन अकेले में अपनी बेटी से उसने कहा कि क्या तुमने अपनी सास को गोद ले रखा है जो इतने प्रेम से उसकी सेवा करती हो और उसको छोड़कर कहीं आती-जाती भी नहीं हो। यहां तक कि तुम मायके जाना भी भूल गयी। कब तक ऐसा करती रहोगी? मां की बात सुनकर बेटी ने कहा—मां! यही समझ लो कि मैंने अपनी सास को गोद ले रखा है। मैंने अपने दो बच्चों को जन्म दिया है और मेरी सास मेरा तीसरा बच्चा है। जब तक यह जीयेगी इसी प्रकार मैं उनकी सेवा करती रहूंगी। यही तो वह देवी है जिसने मेरे पति को जन्म दिया है और पाल-पोसकर, पढ़ा-लिखाकर हर प्रकार से योग्य बनाया है। इनकी तो मैं जितनी भी सेवा करूं कम ही है। अपनी बेटी की बात सुनकर उसकी मां ने उसे गले से लगा लिया और कहा—तेरी जैसी बेटी को जन्म देकर मैं धन्य हो गयी। तेरी जैसी समझ हर बहू को हो जाये तो किसी भी सास को न तो बुढ़ापा में अकेले रहने की नौबत आयेगी और न उसका बुढ़ापा दुखद होगा।

शादी के बाद हर लड़की को ससुराल जाना होता है। यदि उसे ससुराल में पति और सास का भरपूर प्यार, स्नेह और सहयोग मिले तो किसी भी लड़की का वैवाहिक जीवन दुखद नहीं होगा। परंतु हर लड़की का☞

खून सफेद

लेखक—मुंशी प्रेमचंद

चैत का महीना था, लेकिन वे खलियान, जहां अनाज की ढेरियां लगी रहती थीं, पशुओं के शरणस्थल बने हुए थे; जहां घरों से फाग और बसन्त का अलाप सुनाई पड़ता, वहां आज भाग्य का रोना था। सारा चौमासा बीत गया, पानी की एक बूंद न गिरी। जेठ में एक बार मूसलाधार वृष्टि हुई थी, किसान फूले न समाये। खरीफ की फसल बो दी, लेकिन इन्द्रदेव ने अपना सर्वस्व शायद एक ही बार लुटा दिया था। पौधे उगे, बढ़े और फिर सूख गये। गोचर भूमि में घास न जमी। बादल आते, घटाएं उमड़तीं, ऐसा मालूम होता कि जल-थल एक हो जायेगा, परन्तु वे आशा की नहीं, दुःख की घटाएं थीं।

किसानों ने बहुतेरे जप-तप किये, ईंट और पत्थर देवी-देवताओं के नाम से पुजाये, बलिदान किये, पानी की अभिलाषा में रक्त के पनाले बह गये, लेकिन इन्द्रदेव किसी तरह न पसीजे। न खेतों में पौधे थे, न गोचरों में घास, न तालाबों में पानी। बड़ी मुसीबत का सामना था। जिधर देखिए, धूल उड़ रही थी। दरिद्रता और क्षुधा-पीड़ा के दारुण दृश्य दिखाई देते थे। लोगों ने पहले तो गहने और बरतन गिरवी रखे और अन्त में बेच डाले। फिर जानवरों की बारी आयी और अब जीविका का अन्य कोई सहारा न रहा, तब जन्मभूमि पर जान देने वाले किसान बाल-बच्चों को लेकर मजदूरी करने निकल पड़े। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए कहीं-कहीं सरकार की सहायता से काम खुल गया था। बहुतेरे वहीं जाकर जमे। जहां जिसको सुभीता हुआ, वह उधर ही जा निकला।

संध्या का समय था। जादोराय थका-मांदा आकर बैठ गया और स्त्री से उदास होकर बोला—दरखास्त नामंजूर हो गयी। यह कहते-कहते वह आंगन में जमीन पर लेट गया। उसका मुख पीला पड़ रहा था और आंतें सिकुड़ी जा रही थीं। आज दो दिन से उसने दाने की सूरत नहीं देखी। घर में जो कुछ विभूति थी, गहने-कपड़े, बरतन-भांड़े सब पेट में समा गए। गांव का साहूकार भी पतिव्रता स्त्रियों की भांति आंखें चुराने लगा। केवल तकाबी का सहारा था, उसी के लिए दरखास्त दी थी, लेकिन आज वह भी नामंजूर हो गयी, आशा का झिलमिलाता हुआ दीपक बुझ गया।

देवकी ने पति को करुण दृष्टि से देखा। उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये। पति दिन भर का थका-मांदा घर आया है। उसे क्या खिलाये? लज्जा के मारे वह हाथ-पैर धोने के लिए पानी भी न लायी। जब हाथ-पैर धोकर आशा-भरी चितवन से वह उसकी ओर देखेगा, तब वह उसे क्या खाने को देगी? उसने स्वयं कई दिन से दाने की सूरत नहीं देखी थी, लेकिन इस समय उसे जो दुख हुआ, वह क्षुधातुरता के कष्ट से कई गुना अधिक था। स्त्री घर की लक्ष्मी है, घर के प्राणियों

☜भी यह कर्तव्य होता है कि जवानी और बुद्धि के जोश और अहंकार में पड़कर वह अपनी सास का अपमान, तिरस्कार, अवहेलना न करे, किन्तु अपनी सास को हर प्रकार से आदर-सम्मान दे और उसकी प्रेमपूर्वक सेवा करे। एक न एक दिन सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यदि घर-परिवार को सुखमय बनाना है तो हर सास-बहू का कर्तव्य है कि दोनों अपने-अपने अधिकार-अहंकार और स्वार्थ भावना को त्यागकर अपने-अपने कर्तव्य और सेवा पर ध्यान दे। और जितनी जल्दी हो सके दोनों के बीच मां-बेटी का रिश्ता बनाकर रखे। जिस घर-परिवार में सास-बहू के बीच मां-बेटी जैसा व्यवहार-बरताव, आदर-स्नेह रहता है वहां दोनों के मन में प्रसन्नता तो रहती ही है, घर के पुरुषों के मन में भी बड़ी शांति-निश्चिंतता रहती है और छोटे बच्चों का पालन-पोषण ठीक से होने के साथ-साथ उन्हें अच्छे संस्कार मिलते रहते हैं।

—धर्मेन्द्र दास

को खिलाना-पिलाना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। और चाहे यह उसका अन्याय ही क्यों न हो, लेकिन अपनी दीनहीन दशा पर जो मानसिक वेदना उसे होती है, वह पुरुषों को नहीं हो सकती।

हठात् उसका बच्चा साधो नींद से चौंका और मिठाई के लालच में आकर वह बाप से लिपट गया। इस बच्चे ने आज प्रातःकाल चने की रोटी का एक टुकड़ा खाया था और तब से कई बार उठा और कई बार रोते-रोते सो गया। चार वर्ष का नादान बच्चा, उसे वर्षा और मिठाई में कोई संबंध नहीं दिखाई देता था। जादोराय ने उसे गोद में उठा लिया और उसकी ओर दुःखभरी दृष्टि से देखा। गर्दन झुक गयी और हृदय-पीड़ा आंखों में न समा सकी।

दूसरे दिन वह परिवार भी घर से बाहर निकला। जिस तरह पुरुष के चित्त से अभिमान और स्त्री की आंख से लज्जा नहीं निकलती, उसी तरह अपनी मेहनत से रोटी कमाने वाला किसान भी मजदूरी की खोज में घर से बाहर नहीं निकलता। लेकिन हा पापी पेट! तू सब कुछ कर सकता है! मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा के सब चमकते हुए तारे तेरी काली घटाओं की ओट में छिप जाते हैं।

प्रभात का समय था। ये दोनों विपत्ति के सताये घर से निकले। जादोराय ने लड़के को पीठ पर लिया। देवकी ने फटे-पुराने कपड़ों की वह गठरी सिर पर रखी, जिस पर विपत्ति को भी तरस आता। दोनों की आंखें आंसुओं से भरी थीं। देवकी रोती रही। जादोराय चुपचाप था। गांव के दो-चार आदमियों से भेंट भी हुई, किसी ने इतना भी नहीं पूछा कि कहां जाते हो? किसी के हृदय में सहानुभूति का वास न था।

जब ये लोग लालगंज पहुंचे, उस समय सूर्य ठीक सिर पर था। देखा, मीलों तक आदमी-ही-आदमी दिखाई देते थे। लेकिन हर चेहरे पर दीनता और दुख के चिन्ह झलक रहे थे।

बैसाख की जलती हुई धूप थी। आग के झोंके जोर-जोर से हरहराते हुए चल रहे थे। ऐसे समय में हड्डियों के अगणित ढांचे, जिनके शरीर पर किसी प्रकार का कपड़ा न था, मिट्टी खोदने में लगे हुए थे, मानो वह मरघट भूमि थी, जहां मुरदे अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहे थे। बूढ़े और जवान, मर्द और बच्चे, सबके सब ऐसे निराश और विवश होकर काम में लगे हुए थे, मानो मृत्यु और भूख उनके सामने बैठी घूर रही है। इस आफत में न कोई किसी का मित्र था न हितू। दया, सहृदयता और प्रेम ये सब मानवीय भाव हैं, जिनका कर्ता मनुष्य है; प्रकृति ने हमको केवल एक भाव प्रदान किया है और वह स्वार्थ है। मानवीय भाव बहुधा कपटी मित्रों की भांति हमारा साथ छोड़ देते हैं, पर यह ईश्वर-प्रदत्त गुण हमारा गला नहीं छोड़ता।

आठ दिन बीत गए थे। संध्या समय काम समाप्त हो चुका था। डेरे से कुछ दूर आम का एक बाग था। वहीं एक पेड़ के नीचे जादोराय और देवकी बैठी हुई थी। दोनों ऐसे कृश हो रहे थे कि उनकी सूरत नहीं पहचानी जाती थी। अब वह स्वाधीन कृषक नहीं रहे। समय के हेर-फेर से आज दोनों मजदूर बने बैठे हैं।

जादोराय ने बच्चे को जमीन पर सुला दिया। उसे कई दिन से बुखार आ रहा है। कमल-सा चेहरा मुरझा गया है। देवकी ने धीरे से हिलाकर कहा—बेटा! आंखें खोलो, देखो सांझ हो गयी।

साधो ने आंख खोल दी, बुखार उतर गया था, बोला—क्या हम घर आ गये मां?

घर की याद आ गयी, देवकी की आंखें डबडबा आयीं। उसने कहा—नहीं, बेटा! तुम अच्छे हो जाओगे तो घर चलेंगे। उठकर देखो, कैसा अच्छा बाग है?

साधो मां के हाथों के सहारे उठा और बोला—मां, मुझे बड़ी भूख लगी है; लेकिन तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। मुझे क्या खाने को दोगी?

देवकी के हृदय में चोट लगी, पर धीरज धरके बोली—नहीं बेटा, तुम्हारे खाने को मेरे पास सब कुछ है। तुम्हारे दादा पानी लाते हैं, तो नरम-नरम रोटियां अभी बनाये देती हूं।

साधो ने मां की गोद में सिर रख लिया और बोला—मां, मैं न होता तो तुम्हें इतना दुःख न होता। यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। यह वही बेसमझ बच्चा है, जो दो सप्ताह पहले मिठाइयों के लिए दुनिया सिर पर उठा लेता था। दुख और चिन्ता ने कैसा

अनर्थ कर दिया है। यह विपत्ति का फल है। कितना दुःखपूर्ण, कितना करुणाजनक व्यापार है!

इसी बीच में कई आदमी लालटेन लिए हुए वहां आये। फिर गाड़ियां आयीं। उन पर डेरे और खेमे लदे हुए थे। दम-के-दम यहां खेमे गड़ गए। सारे बाग में चहल-पहल नजर आने लगी। देवकी रोटियां सेंक रही थी, साधो धीरे-धीरे उठा और आश्चर्य से देखता हुआ, एक डेरे के नजदीक जाकर खड़ा हो गया।

पादरी मोहनदास खेमे से बाहर निकले, तो साधो उन्हें खड़ा दिखाई दिया। उसकी सूरत पर उन्हें तरस आ गया। प्रेम की नदी उमड़ आयी। बच्चे को गोद में लेकर खेमे में एक गद्देदार कोच पर बिठा दिया और तब बिस्कुट और केले खाने को दिये। लड़के ने अपनी जिन्दगी में इन स्वादिष्ट चीजों को कभी न देखा था। बुखार की बेचैन करने वाली भूख अलग मार रही थी। उसने खूब मन-भर खाया और तब कृतज्ञ नेत्रों से देखते हुए पादरी साहब के पास जाकर बोला—तुम हमको रोज ऐसी चीजें खिलाओगे?

पादरी साहब इस भोलेपन पर मुसकरा के बोले—मेरे पास इससे भी अच्छी-अच्छी चीजें हैं।

इस पर साधोराय ने कहा—अब मैं रोज तुम्हारे पास आऊंगा। मां के पास ऐसी अच्छी चीजें कहां? वह मुझे रोज चने की रोटियां खिलाती है।

उधर देवकी ने रोटियां बनायीं और साधो को पुकारने लगी। साधो ने मां के पास जाकर कहा—मुझे साहब ने अच्छी-अच्छी चीजें खाने को दी हैं। साहब बड़े अच्छे हैं।

देवकी ने कहा—मैंने तुम्हारे लिए नरम-नरम रोटियां बनायी हैं, आओ तुम्हें खिलाऊं।

साधो बोला—अब मैं न खाऊंगा। साहब कहते थे कि मैं तुम्हें रोज अच्छी-अच्छी चीजें खिलाऊंगा। मैं अब उनके साथ रहा करूंगा। मां ने समझा कि लड़का हंसी कर रहा है। उसे छाती से लगाकर बोली—क्यों बेटा, हमको भूल जाओगे? देखो, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूं!

साधो तुतलाकर बोला—तुम तो मुझे रोज चने की रोटियां दिया करती हो, तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। साहब मुझे केले और आम खिलाएंगे। यह कहकर वह फिर खेमे की ओर भागा और रात को वहीं सो रहा।

पादरी मोहनदास का पड़ाव वहां तीन दिन रहा। साधो दिन-भर उन्हीं के पास रहता। साहब ने उसे मीठी दवाइयां दीं। उसका बुखार जाता रहा। वह भोले-भाले किसान यह देखकर साहब को आशीर्वाद देने लगे कि लड़का चंगा हो गया और आराम से है। साहब को परमात्मा सुखी रखे। उन्होंने बच्चे की जान रख ली।

चौथे दिन रात को ही वहां से पादरी साहब ने कूच किया। सुबह को जब देवकी उठी, तो साधो का वहां पता न था। उसने समझा, कहीं टपके ढूंढ़ने गया होगा; किन्तु थोड़ी देर देखकर उसने जादोराय से कहा—लल्लू यहां नहीं है।

उसने भी यही कहा—कहीं टपके ढूंढ़ता होगा।

लेकिन जब सूरज निकल आया और काम पर चलने का वक्त हुआ, तब जादोराय को कुछ संशय हुआ। उसने कहा—तुम यहीं बैठी रहना, मैं अभी उसे लिए आता हूं।

जादो ने आस-पास के सब बागों को छान डाला और अन्त में जब दस बज गए तो निराश लौट आया। साधो न मिला, यह देखकर देवकी ढाढ़ें मारकर रोने लगी।

फिर दोनों अपने लाल की तलाश में निकले। अनेक विचार चित्त में आने-जाने लगे। देवकी को पूरा विश्वास था कि उस साहब ने उस पर कोई मन्त्र डालकर वश में कर लिया। लेकिन जादो को इस कल्पना के मान लेने में कुछ सन्देह था। बच्चा इतनी दूर अनजान रास्ते पर अकेले नहीं जा सकता। फिर भी दोनों गाड़ी के पहियों और घोड़े के टापों के निशान देखते चले जाते थे। यहां तक कि एक सड़क पर आ पहुंचे। वहां गाड़ी के बहुत से निशान थे। उस विशेष लीक की पहचान न हो सकती थी। घोड़े के टाप भी एक झाड़ी की तरफ जाकर गायब हो गए। आशा का सहारा टूट गया। दोपहर हो गयी थी। दोनों धूप के मारे बेचैन और निराशा से पागल हो रहे थे। वहीं एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। देवकी विलाप करने लगी। जादोराय ने उसे समझाना शुरू किया।

जब जरा धूप की तेजी कम हुई, तो दोनों फिर आगे चले। किन्तु अब आशा की जगह निराशा साथ थी, घोड़े के टापों के साथ उम्मीद का धुंधला निशान गायब हो गया था।

शाम हो गयी। इधर-उधर गायों, बैलों के झुण्ड निर्जीव से पड़े दिखाई देते थे। यह दोनों दुखिया हिम्मत हारकर एक पेड़ के नीचे टिक रहे। उसी वृक्ष पर मैने का एक जोड़ा बसेरा लिए हुए था। उनका नन्हा-सा शावक आज ही एक शिकारी के चंगुल में फंस गया था। दोनों दिन-भर उसे खोजते फिरे। इस समय निराश होकर बैठ रहे। देवकी और जादो को अभी तक आशा की झलक दिखाई देती थी। इसीलिए वे बेचैन थे।

तीन दिन तक ये दोनों अपने खोये हुए लाल की तलाश करते रहे। दाने से भेंट नहीं; प्यास से बेचैन होते दो-चार घूंट पानी गले के नीचे उतार लेते।

आशा की जगह निराशा का सहारा था। दुख और करुणा के सिवाय और कोई वस्तु नहीं। किसी बच्चे के पैर के निशान देखते, तो उनके दिलों में आशा तथा भय की लहरें उठने लगती थीं।

लेकिन प्रत्येक पग उन्हें अभीष्ट स्थान से दूर लिए जाता था।

इस घटना को हुए चौदह वर्ष बीत गए। इन चौदह वर्षों में सारी काया पलट गयी। चारों ओर रामराज्य दिखाई देने लगा। इंद्रदेव ने कभी उस तरह अपनी निर्दयता न दिखाई और न जमीन ने ही। उमड़ी हुई नदियों की तरह अनाज से ढेकियां भरी चलीं। उजड़े हुए गांव बस गए। मजदूर किसान बन बैठे और किसान जायदाद की तलाश में दौड़ने लगे। वही चैत के दिन थे। खलियानों में अनाज के पहाड़ खड़े थे। भाट और भिखमंगे किसानों की बढ़ती के तराने गा रहे थे। सुनारों के दरवाजे पर सारे दिन और आधी रात तक गाहकों का जमघट लगा रहता था। दरजी को सिर उठाने की फुरसत न थी। इधर-उधर दरवाजों पर घोड़े हिनहिना रहे थे। देवी के पुजारियों को अजीर्ण हो रहा था।

जादोराय के दिन भी फिरे। घर पर छप्पर की जगह खपरैल हो गया है। दरवाजे पर अच्छे बैलों की जोड़ी बंधी हुई है। वह अब अपनी बहली पर सवार होकर बाजार जाया करता है। उसका बदन अब उतना सुडौल नहीं है। पेट पर इस सुदशा का विशेष प्रभाव पड़ा है और बाल भी सफेद हो चले हैं। देवकी की गिनती भी गांव की बूढी औरतों में होने लगी है। व्यावहारिक बातों में उसकी बड़ी पूछ हुआ करती है। जब वह किसी पड़ोसिन के घर जाती है, तो वहां की बहुएं भय के मारे थरथराने लगती हैं। उसके कटु वाक्य और तीव्र आलोचना की सारे गांव में धाक बंधी हुई है। महीन कपड़े अब उसे अच्छे नहीं लगते लेकिन गहनों के बारे में वह उतनी उदासीन नहीं है।

उनके जीवन का दूसरा भाग इससे कम उज्जवल नहीं है। उनकी दो संतानें हैं। लड़का माधो सिंह अब खेतीबारी के काम में बाप की मदद करता है। लड़की का नाम शिवगौरी है। वह भी मां को चक्की पीसने में सहायता दिया करती है और खूब गाती है। बर्तन धोना उसे पसंद नहीं लेकिन चौका लगाने में निपुण है। गुड़ियों के ब्याह करने से उसका जी कभी नहीं भरता। आये दिन गुड़ियों के विवाह होते रहते हैं। हां, इनमें किफायत का पूरा ध्यान रहता है। खोए हुए साधो की याद अभी बाकी है। उसकी चर्चा नित्य हुआ करती है और कभी बिना रुलाये नहीं रहती। देवकी कभी-कभी सारे दिन उस लाड़ले बेटे की सुध में अधीर रहा करती है।

सांझ हो गयी थी। बैल दिन-भर के थके-मांदे सिर झुकाए चले आते थे। पुजारी ने ठाकुरद्वारे में घंटा बजाना शुरू किया।

आजकल फसल के दिन हैं। रोज पूजा होती है। जादोराय खाट पर बैठे नारियल पी रहे थे। शिवगौरी रास्ते में खड़ी उन बैलों को कोस रही थी, जो उसके भूमिस्थ विशाल भवन का निरादर करके उसे रौंदते चले जाते थे। घड़ियाल और घंटे की आवाज सुनते ही जादोराय भगवान का चरणामृत लेने के लिए उठे ही थे कि उन्हें अकस्मात एक नवयुवक दिखाई पड़ा, जो भूंकते हुए कुत्तों को दुतकारता, बाईसिकल को आगे

बढ़ाता हुआ चला आ रहा था। उसने उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया। जादोराय ने गौर से देखा और तब दोनों एक दूसरे से लिपट गए। माधो भौंचक होकर बाईसिकल को देखने लगा। शिवगौरी रोती हुई घर में भागी और देवकी से बोली—दादा को साहब ने पकड़ लिया है। देवकी घबरायी हुई बाहर आयी। साधो उसे देखते ही उसके पैरों पर गिर पड़ा। देवकी उसे छाती से लगाकर रोने लगी। गांव के मर्द, औरतें और बच्चे सब जमा हो गए। मेला-सा लग गया।

साधो ने अपने माता-पिता से कहा—मुझ अभागे से जो कुछ अपराध हुआ हो, उसे क्षमा कीजिए। मैंने अपनी नादानी से स्वयं बहुत कष्ट उठाए और आप लोगों को भी दुःख दिया, लेकिन अब मुझे अपनी गोद में लीजिए।

देवकी ने रोकर कहा—जब हमको छोड़कर भागे थे, तो हम लोग तुम्हें तीन दिन तक बे-दाना-पानी के ढूंढ़ते रहे, पर जब निराश हो गए, तब अपने भाग्य को रोकर बैठ रहे। तब से आज तक कोई ऐसा दिन न गया कि तुम्हारी सुधि न आयी हो। रोते-रोते एक युग बीत गया; अब तुमने खबर ली है। बताओ बेटा! उस दिन तुम कैसे भागे और कहां जाकर रहे?

साधो ने लज्जित होकर उत्तर दिया—माताजी, अपना हाल क्या कहूं! मैं पहर रात रहे, आपके पास से उठकर भागा। पादरी साहब के पड़ाव का पता शाम ही को पूछ लिया था। बस पूछता हुआ उनके पास दोपहर को पहुंच गया। साहब ने मुझे पहले समझाया कि अपने घर लौट जाओ, लेकिन जब मैं किसी तरह राजी न हुआ, तो उन्होंने मुझे पूना भेज दिया। मेरी तरह वहां सैकड़ों लड़के थे। वहां बिस्कुट और नारंगियों का भला क्या जिक्र! जब मुझे आप लोगों की याद आती, मैं अक्सर रोया करता। मगर बचपन की उम्र थी, धीरे-धीरे उन्हीं लोगों से हिल-मिल गया। हां, जब से कुछ होश हुआ है और अपना-पराया समझने लगा हूं, तब से अपनी नादानी पर हाथ मलता रहा हूं। रात-दिन आप लोगों की रट लगी हुई थी। आज आप लोगों के आशीर्वाद से यह शुभ दिन देखने को को मिला। दूसरों में बहुत दिन काटे, बहुत दिनों तक अनाथ रहा। अब मुझे अपनी सेवा में रखिए। मुझे अपनी गोद में लीजिए। मैं प्रेम का भूखा हूं। बरसों से मुझे जो सौभाग्य नहीं मिला, वह अब दीजिए।

गांव के बहुत-से बुड्ढे जमा थे। उनमें से जगतसिंह बोले—तो क्यों बेटा! तुम इतने दिनों तक पादरियों के साथ रहे? उन्होंने तुमको भी पादरी बना लिया होगा?

साधो ने सिर झुकाकर कहा—जी हां, यह तो उनका दस्तूर है। जगतसिंह ने जादोराय की तरफ देखकर कहा—यह बड़ी कठिन बात है। साधो बोला—बिरादरी मुझे जो प्रायश्चित बतलाएगी, मैं उसे करूंगा। मुझसे जो कुछ बिरादरी का अपराध हुआ है, नादानी से हुआ है लेकिन मैं उसका दण्ड भोगने के लिए तैयार हूं।

जगतसिंह ने फिर जादोराय की तरफ कनखियों से देखा और गंभीरता से बोले—हिन्दू धर्म में ऐसा कभी नहीं हुआ है। यों तुम्हारे मां-बाप तुम्हें अपने घर में रख लें, तुम उनके लड़के हो, मगर बिरादरी कभी इस काम में शरीक न होगी। बोलो जादोराय! क्या कहते हो, कुछ तुम्हारे मन की भी तो सुन लें?

जादोराय बड़ी दुविधा में था। एक ओर तो अपने प्यारे बेटे की प्रीति थी, दूसरी ओर बिरादरी का भय मारे डालता था। जिस लड़के के लिए रोते-रोते आंखें फूट गयीं, आज वही सामने खड़ा आंखों में आंसू भरे कहता है, पिताजी! मुझे अपनी गोद में लीजिए; और मैं पत्थर की तरह अचल खड़ा हूं। शोक! इन निर्दयी भाइयों को किस तरह समझाऊं, क्या करूं, क्या न करूं?

लेकिन मां की ममता उमड़ आयी। देवकी से न रहा गया। उसने अधीर होकर कहा—मैं अपने घर में रखूंगी और कलेजे से लगाऊंगी। इतने दिनों के बाद मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती।

जगतसिंह रुष्ट होकर बोले—चाहे बिरादरी छूट ही क्यों न जाये?

देवकी ने भी गरम होकर जवाब दिया—हां! चाहे बिरादरी छूट जाये। लड़के-बालों ही के लिए आदमी बिरादरी की आड़ पकड़ता है। जब लड़का न रहा, तो भला बिरादरी किस काम आयेगी?

इस पर कई ठाकुर लाल-लाल आंखें निकालकर बोले—ठाकुराइन! बिरादरी की तो खूब मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्ते पर जाये, लेकिन बिरादरी चूं तक न करे? ऐसी बिरादरी कहीं होगी! हम साफ-साफ कहे देते हैं कि अगर यह लड़का तुम्हारे घर में रहा, तो बिरादरी भी बता देगी कि वह क्या कर सकती है।

जगतसिंह कभी-कभी जादोराय से रुपये उधार लिया करते थे। मधुर स्वर से बोले—भाभी! बिरादरी यह थोड़े ही कहती है कि तुम लड़के को घर से निकाल दो। लड़का इतने दिनों के बाद घर आया है तो हमारे सिर आंखों पर रहे। बस, जरा खाने-पीने और छूत-छात का बचाव बना रहना चाहिए। बोलो जादो भाई! अब बिरादरी को कहां तक दबाना चाहते हो?

जादोराय ने साधो की तरफ करुणा भरे नेत्रों से देखकर कहा—बेटा, जहां तुमने हमारे साथ इतना सलूक किया है, वहां जगत भाई की इतनी कहा और मान लो!

साधो ने कुछ तीक्ष्ण शब्दों में कहा—क्या मान लूं? यह कि अपनों में गैर बनकर रहूं, अपमान सहूं; मिट्टी का घड़ा भी मेरे छूने से अशुद्ध हो जाये! न, यह मेरा किया न होगा, इतना निर्लज्ज नहीं!

जादोराय को पुत्र की यह कठोरता अप्रिय मालूम हुई। वे चाहते थे कि इस वक्त बिरादरी के लोग जमा हैं, उनके सामने किसी तरह समझौता हो जाये, फिर कौन देखता है कि हम उसे किस तरह रखते हैं? चिढ़कर बोले—इतनी बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी।

साधोराय इस रहस्य को न समझ सका। बाप की इस बात में उसे निष्ठुरता की झलक दिखाई पड़ी। बोला—मैं आपका लड़का हूं। आपके लड़के की तरह रहूंगा। आपके भक्ति और प्रेम की प्रेरणा मुझे यहां तक लायी है। मैं अपने घर में रहने आया हूं, अगर यह नहीं है तो इसके सिवा मेरे लिए इसके और कोई उपाय नहीं है कि जितनी जल्दी हो सके, यहां से भाग जाऊं। जिनका खून सफेद है, उनके बीच में रहना व्यर्थ है।

देवकी ने रोकर कहा—लल्लू, मैं अब तुम्हें न जाने दूंगी।

साधो की आंखें भर आयीं, पर मुस्कराकर बोला—मैं तो तुम्हारी थाली में खाऊंगा।

देवकी ने उसे ममता और प्रेम की दृष्टि से देखकर कहा—मैंने तो तुझे छाती से दूध पिलाया है, तू मेरी थाली में खायेगा तो क्या? मेरा बेटा ही तो है, कोई और तो नहीं हो गया!

साधो इन बातों को सुनकर मतवाला हो गया। इनमें कितना स्नेह कितना अपनापन था। बोला—मां, आया तो मैं इसी इरादे से था कि अब कहीं न जाऊंगा, लेकिन बिरादरी ने मेरे कारण यदि तुम्हें जातिच्युत कर दिया, तो मुझसे न सहा जायेगा। मुझसे इन गंवारों का कोरा अभिमान न देखा जायेगा। इसलिए इस वक्त मुझे जाने दो। जब मुझे अवसर मिला करेगा तो तुम्हें देख जाया करूंगा। तुम्हारा प्रेम मेरे चित्त से नहीं जा सकता। लेकिन यह असम्भव है कि मैं इस घर में रहूं और अलग खाना खाऊं, अलग बैठूं। इसके लिए मुझे क्षमा करना।

देवकी घर में से पानी लायी। साधो मुंह धोने लगा। शिवगौरी ने मां का इशारा पाया, तो डरते-डरते साधो के पास गयी, साधो को आदरपूर्वक दंडवत की। साधो ने पहले उन दोनों को आश्चर्य से देखा, फिर अपनी मां को मुस्कराते देख समझ गया। दोनों लड़कों को छाती से लगा लिया और तीनों भाई-बहिन प्रेम से हंसने-खेलने लगे। मां खड़ी यह दृश्य देखती थी और उमंग से फूली न समाती थी।

जलपान करके साधो ने बाईसिकल संभाली और मां-बाप के सामने सिर झुकाकर चल खड़ा हुआ—वहीं, जहां से तंग होकर आया था; उसी क्षेत्र में, जहां अपना कोई न था।

देवकी फूट-फूटकर रो रही थी और जादोराय आंखों में आंसू भरे, हृदय में एक ऐंठन-सी अनुभव करता हुआ सोचता था, हाय! मेरे लाल, तू मुझसे अलग हुआ जाता है। ऐसा योग्य और होनहार लड़का हाथ से निकला जाता है और केवल इसलिए कि अब हमारा खून सफेद हो गया।

❑

व्यवहार और परमार्थ

हमारे जीवन के दो पक्ष हैं एक व्यवहार का और दूसरा परमार्थ का, क्योंकि जीवन ही दो मूलभूत पदार्थों का संगम है, दो मूलभूत पदार्थों के योग से बना है। हमारा शरीर भौतिक पदार्थों के योग से बना है लेकिन यह शरीर तब तक चल रहा है जब तक इसमें चेतन जीव का निवास हो रहा है। जैसे ही जीव इस शरीर से निकल जाता है फिर शरीर की कोई कीमत नहीं होती।

एक राजा के पास घोड़े का एक सौदागर पहुंचा और कहा—राजन! मैं बड़ी दूर से आपके पास घोड़ा बेचने के लिए आया हूं, आप मेरा घोड़ा खरीद लें। राजा ने पूछा—तुम्हारा घोड़ा कहां है? उसने कहा—हुजूर! घोड़ा तो डेरे के पास बंधा है। बहुत बढ़िया घोड़ा है, आपके ही लायक है। राजा ने कहा—घोड़े की कीमत क्या है? सौदागर ने कहा—बीस हजार रुपये। राजा ने कहा—तुम्हारे घोड़े की तो बड़ी कीमत है, कुछ कम नहीं करोगे? उसने कहा—हुजूर! कम कर दूंगा। राजा ने कहा—कितना कम करोगे? सौदागर ने कहा—हुजूर! बीस रुपये में दे दूंगा। राजा ने कहा—बीस हजार का घोड़ा बीस रुपये में कैसे दे दोगे। क्या कारण है? सौदागर ने कहा—हुजूर! उसमें एक छोटी सी चीज की कमी है। राजा ने कहा—कौन-सी चीज की कमी है? उसने कहा—हुजूर! उसमें जान नहीं है, जीव नहीं है।

शरीर में जब तक जीव है तब तक शरीर की कीमत है, तब तक जीवन का व्यवहार है। शरीर में जब तक जीव है तब तक माता माता है, पिता पिता है, भाई भाई है, पत्नी पत्नी है, पति पति है, गुरु गुरु है, शिष्य शिष्य है। जिस दिन शरीर से जीव निकल जाता है फिर माता माता नहीं रहती, पिता पिता नहीं रहता, पत्नी पत्नी नहीं रहती, गुरु गुरु नहीं रहता, पुत्र पुत्र नहीं रहता। उस समय लोग कहते हैं कि भैया, मिट्टी पड़ी है। अब इसे ठिकाने पर लगा देना है।

जीवन भौतिक है। भौतिक तत्त्वों के योग से बना है, लेकिन इसमें जीव का निवास हो रहा है इसलिए यह जीवन बड़ा कीमती है। भौतिक शरीर के लिए भौतिक क्षेत्र में परिश्रम करने की आवश्यकता है लेकिन केवल भौतिक विकास से किसी को आत्मिक संतोष की प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मिक संतोष के लिए आध्यात्मिक विकास की जरूरत पड़ती है।

लोग एकांगी हो जाते हैं। केवल एक तरफ देखने लग जाते हैं। या तो केवल भौतिक क्षेत्र में दृष्टि होती है या फिर आध्यात्मिक दृष्टि इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि कितने महात्मा लोग एक स्वर से भौतिकता की निंदा में जुट जाते हैं। ये दोनों गलत हैं। दोनों की अपनी कीमत है। सबसे पहले जीवन में भौतिक चीजों की ही आवश्यकता है।

जीवन में सबकी पहली आवश्यकता रोटी है। रोटी न मिले तो सारा ज्ञान-ध्यान, विवेक-विचार कोई काम नहीं आयेगा। खूब भूख लगी हो, तीन दिनों से खाने को नहीं मिला है तो कितना ही आत्मा-परमात्मा की चर्चा करें उससे भूख दूर नहीं हो सकती। कितना ही स्वर्ग-नरक पर व्याख्यान देते रहें, मोक्ष-गति पर चर्चा करते रहें, भूख दूर नहीं होगी। उसके लिए तो रोटी की, भोजन की ही जरूरत होगी। इसलिए भौतिक क्षेत्र में विकास की आवश्यकता है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन भौतिक क्षेत्र जीवन का साध्य या उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य है आत्मिक शांति, आत्मिक संतोष की प्राप्ति। इसलिए दोनों तरफ दृष्टि रखने की जरूरत है।

आज विज्ञान का जमाना है, विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि आज पूरी दुनिया एक घर आंगन में सिमट गयी है। घर बैठे सेकण्डों में दुनिया के किसी कोने का समाचार जान सकते हैं। घर बैठे सेकण्डों में दुनिया में कहीं बैठे हुए व्यक्ति से बात कर सकते हैं। थोड़ी देर में ही तीव्रगामी संसाधनों के माध्यम से कहां से कहां पहुंच सकते हैं। आज विज्ञान ने देश और काल की दूरी को समाप्त कर दिया है। विज्ञान ने बड़ा कमाल

किया है और उसके परिणामस्वरूप पूरी दुनिया आदमी की मुट्ठी में मानो सिमट गयी है। लेकिन दुर्भाग्य यह हुआ कि देश और काल की दूरी घटती गयी और दिल से दिल की दूरी बढ़ती चली गयी।

आज किसी का दिल किसी से मिल नहीं रहा है। यहां तक पति और पत्नी के दिल में दूरी है, भाई और भाई के दिल में दूरी है, गुरु और शिष्य के दिल में दूरी है। इसमें प्रमुख कारण हैं स्वार्थ और अहंकार। भोग-बुद्धि, भोग-लालसा, अधिकार की लालसा, जितनी बढ़ेगी उतनी दिल से दिल की दूरी बढ़ती चली जायेगी।

आज आदमी स्वकेन्द्रित होता चला जा रहा है। वह अपने को ही सोचता है कि मेरा स्वार्थ पूरा होना चाहिए और मेरे स्वार्थ की पूर्ति के लिए चाहे किसी के पेट पर लात भी मारना पड़े तो कोई हर्ज नहीं है। किसी की गर्दन पर छूरी चलाना पड़े तो कोई हर्ज नहीं है, किसी के रास्ते में रोड़ा अटकाना पड़े तो कोई हर्ज नहीं है। आज आदमी को अपना ही स्वार्थ सबसे अधिक प्रिय हो गया है और जब अपना स्वार्थ प्रिय होगा, अधिकार की लालसा बढ़ेगी, भोग-बुद्धि बढ़ेगी तो दिल कभी दिल से मिल नहीं सकता है। इसके लिए तो स्वार्थ-त्याग की आवश्यकता होगी।

यद्यपि जीवन में स्वार्थ का पूरा त्याग कोई नहीं कर सकता है। कुछ स्वार्थ की आवश्यकता होती है, लेकिन वह मनुष्यता का स्वार्थ होना चाहिए, पशुता का स्वार्थ नहीं होना चाहिए। मनुष्यता का स्वार्थ आचरणीय है, पशुता का स्वार्थ निंदनीय है। पशुता का स्वार्थ है लड़कर और छीनकर खाना, मनुष्यता का स्वार्थ है बांटकर-सहयोग करके खाना। इसकी आवश्यकता सब समय थी, सब समय रहेगी।

हमारा देश धार्मिक देश है। पदे-पदे यहां धार्मिक आयोजन होते रहते हैं। लोग बड़ी-बड़ी चर्चा करते हैं भगवान-भगवती की, देवी देवताओं की। राम के गुण को गांव का बच्चा-बच्चा जानता है। राम का कीर्तन, राम का नाम लोग बड़े प्रेम से ले रहे हैं लेकिन सारा व्यवहार राम के विरोधी कर रहे हैं। जो राम ने अपने जीवन में कभी नहीं किया वह काम कर रहे हैं। एक तरफ राम का नाम और दूसरी तरफ राम के नाम पर दुराचार।

सब जानते हैं कि पहले राम को अयोध्या की राज-गद्दी मिली थी। लेकिन कहा गया कि अब राजगद्दी भरत को मिलेगी और तुम्हें चौदह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ेगा। राम ने एक शब्द भी नहीं कहा कि मुझे वनवास क्यों भेज रहे हो और भरत को गद्दी क्यों दे रहे हो। बड़ी खुशी के साथ उन्होंने भरत के लिए गद्दी का त्याग कर दिया और राज्य को छोड़ दिया। भरत ननिहाल से आये, उन्हें पता चला कि गद्दी के कारण भैया का वनवास हुआ है तो वे चित्रकूट में गये और उन्होंने अयोध्या की गद्दी, अयोध्या का राज्य राम के चरणों में समर्पित कर दिया कि भैया अयोध्या का राज्य आपका है, आप इसके मालिक हैं। राम ने भी राज्य को ठुकरा दिया और भरत ने भी राज्य को ठुकरा दिया और तभी रामायण की कहानी बनी। भाई का भाई से प्रेम, स्वार्थ का त्याग हुआ। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि कितने राम के भक्त कहलाने वाले लोग भाई से मुकदमा लड़ते हैं जमीन के बंटवारे के लिए और राम का गुणानुवाद गाते हैं।

एक गांव में एक व्यक्ति ने अपने घर में अखण्ड रामायण का पाठ रखा था। वहां के एक प्रसिद्ध सज्जन गली से होकर जा रहे थे। घर वाले ने आकर कहा—बाबू जी, हमारे घर अखंड रामायण का पाठ हो रहा है आप भी पधारें। तो उन्होंने पूछ लिया, तुम अखण्ड रामायण का पाठ किस खुशी में कर रहे हो? क्या उद्देश्य है? उसने बहुत सकुचाते हुए कहा—बाबू जी, आप तो जानते हैं हम दोनों भाइयों में जमीन-जायदाद के बटवारे को लेकर कई साल से वैर-विरोध और मुकदमा चल रहा है। तो भाई से मुकदमा में विजय पाने के लिए अखंड रामायण का पाठ करवा रहा हूं। यह है राम की भक्ति। कहां समझा गया है राम को।

केवल गुणानुवाद गाने से काम नहीं बनेगा। आचरण करने से काम बनेगा। यही है पशुता का

स्वार्थ। राम और भरत के बीच में मनुष्यता का स्वार्थ रहा है। जहां भाई से मुकदमा लड़ा जा रहा है वहां मनुष्यता तो रह ही नहीं गयी है। आप एक बार भी जीवन में कभी भूलकर राम का नाम मत लें। भूलकर भी रामायण का पाठ न करें लेकिन भाई से प्रेम का व्यवहार करें रामायण आपके जीवन में अपने आप आ जायेगी।

विज्ञान ने भले ही देश की दूरी को समाप्त कर दिया है लेकिन दिल की दूरी बढ़ गयी है। क्योंकि चीजें बढ़ गयी हैं और चीज बढ़ने के साथ-साथ भोग लालसाएं बढ़ गयी हैं और भोग-लालसा जितनी बढ़ेगी उतना स्वार्थ बढ़ेगा, आपाधापी बढ़ेगी, वैर-विरोध बढ़ेगा और इंसानियत को भुला दिया जायेगा। इसलिए पहले इंसानियत का पाठ पढ़ने की जरूरत है।

हम मनुष्य हैं। हमारा दिल क्या चाहता है? इस बात को समझें। आदमी कुछ और समझ सके या न समझ सके अपने दिल की भाषा को तो समझ सकता है। एक आदमी ऐसा है जो कभी विद्यालय गया ही नहीं है। क, ख, ग क्या होता है कुछ पहचानता ही नहीं है लेकिन ऐसा अनपढ़ आदमी भी अपने दिल की भाषा को पढ़ सकता है। दिल की भाषा पढ़ने के लिए किसी विद्यालय में जाने की जरूरत नहीं होती है। वह तो स्वसंवेद्य भाषा है, अपने आप समझ में आती है।

मैं क्या चाहता हूं? क्या इसके लिए किसी किताब को पढ़ना पड़ेगा? किसी अध्यापक के पास जाना पड़ेगा? क्या आप किसी के पास जाते हैं यह पूछने के लिए कि भैया, जरा बता दो कि मैं क्या चाहता हूं? उसकी गवाही तो आपका दिल स्वयं दे रहा है। जो आदमी अपने दिल की आवाज को नहीं सुन सकता वह आदमी क्या है? वह भक्त क्या है? वह जो कुछ करता है सब दिखावा मात्र है।

इसलिए असली भक्ति है मनुष्यों के साथ सुंदर प्रेम का व्यवहार। जब तक स्वार्थ एवं अहंकार का त्याग नहीं होगा तब तक सुंदर व्यवहार कोई कर नहीं सकता। सुंदर व्यवहार वहीं होगा जहां स्वार्थ का त्याग होगा।

एक कहानी कही जाती है। जैसे आजकल अनेक जातियों में परस्पर लड़ाई हुआ करती है, वैर-विरोध होते हैं वैसे पहले भी होते रहे हैं। सब समय लड़ाई-झगड़ा होते रहे हैं। पहले भी आज जैसे ही अलग-अलग अनेक जातियां थीं।

उस समय देव और दानव में परस्पर विवाद हुआ करता था। देवता का नाम सुनते ही लोग यह समझ लेते है कि देवता बड़े सुंदर होते थे और दैत्य या दानव का नाम सुनते ही समझ लेते हैं कि दैत्य-दानव बड़े खराब होते थे। ऐसी बात नहीं है। दैत्य, दानव और देवता ये तीनों भाई थे। कश्यप नाम के एक ऋषि हुए हैं जिनकी अदिति नाम की पत्नी से देवता पैदा हुए थे, दनु नाम की पत्नी से दानव और दिति नाम की पत्नी से दैत्य पैदा हुए थे। मां अलग-अलग थीं और पिता एक थे कश्यप।

एक बार दैत्यों ने देवताओं के प्रमुख विष्णु से शिकायत की कि हम लोग भी आपके ही भाई हैं लेकिन आप कभी हमारा पक्ष नहीं लेते हैं। आप सदैव देवताओं का ही पक्ष लेते हैं। इसलिए देवताओं की विजय होती है और हमारी हार होती है। विष्णु ने कहा—ऐसी बात नहीं है, देवताओं में आपस में सुमति है, संगठन है इसलिए उनकी विजय होती है और तुम लोगों में आपस में फूट है, विषमता है इसलिए तुम लोगों की हार होती है।

दैत्यों ने विष्णु की बात नहीं मानी। विष्णु भगवान ने कहा—तुम लोग बात नहीं मानते हो तो मैं कभी परीक्षा करवा दूंगा। एक महीना के बाद विष्णु जी ने अपने यहां एक भण्डारा का आयोजन किया। दैत्यों को भी बुलाया और देवताओं को भी बुलाया। भोजन तैयार हो गया। बैठने की जगह कम थी। एक बार में आधे लोग ही बैठ सकते थे।

विष्णु ने कहा कि जगह कम है। इसमें आधे लोग ही बैठ सकते हैं। चाहे पहले देवता बैठे चाहे पहले दैत्य बैठे। दैत्यों ने कहा—हम पहले बैठेंगे। विष्णु ने

कहा—कोई बात नहीं, तुम ही लोग पहले बैठ जाओ। दैत्य बैठ गये पंक्ति बनाकर। जब भोजन की सामग्री परोस दी गयी तब विष्णु भगवान ने कहा—देखो, भोजन तो करना है लेकिन एक शर्त है कि सबके हाथों में डण्डा बांधा जायेगा ताकि हाथ मुड़ न सके और भोजन उसी हाथ से करना होगा। सबके हाथ में डंडा बांध दिया गया। दैत्य बड़े चक्कर में पड़ गये कि बिना हाथ मोड़े भोजन कैसे किया जायेगा। वे भोजन की सामग्री उठाते थे और दूर से मुख में फेंकते थे। तो भोजन कभी आंख में पड़ता था, कभी गाल में, कभी नाक में तो कभी मस्तक पर और कभी-कभी भोजन का थोड़ा अंश मुख में चला जाता था। बहुत समय बीत गया और पेट किसी का भरा नहीं। दैत्य लोग सब उठ गये।

जगह की सफाई हुई। सफाई के बाद देवता बैठे। दैत्यों ने कहा—देवताओं के लिए भी यही नियम होना चाहिए। विष्णु ने कहा कि घबराओ मत, यही नियम उनके लिए भी होगा। देवता आमने-सामने पंक्ति बनाकर बैठ गये। पत्तल परोस दी गयी और सामग्री भी परोस दी गयी। शर्त के अनुसार सबके हाथ में डण्डा बांध दिया गया। देवताओं ने ग्रास उठाया और सामने वाले के मुख में डाल दिया। सामने वाले उसके मुख में डाल दिये। ऐसे ही सब लोग एक दूसरे को खिलाने लगे। इस प्रकार सबका पेट भर गया और सामग्री भी खराब होने से बच गयी।

दैत्यों ने कहा कि ऐसा तो हम भी कर सकते थे। विष्णु भगवान ने कहा कि तुम्हें रोका किसने था? अर्थ है देवताओं का भी स्वार्थ था और दैत्यों का भी स्वार्थ था। दैत्यों ने स्वयं खाना चाहा इसलिए किसी का पेट नहीं भरा। देवताओं ने दूसरों को खिलाया इसलिए उनका पेट अपने आप भर गया।

स्वार्थ सबको चाहिए। अब आप यह सोचें कि आपको देवताओं का स्वार्थ चाहिए या दैत्यों का स्वार्थ। दैत्यों का स्वार्थ जहां आयेगा वहां कलह होगा ही, बच नहीं सकते। आजकल घर-घर में विवाद क्यों होता है? नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी दोनों में परस्पर टूटन जैसा हो रहा है। दोनों के मन में असंतोष है, खटास है। संतोष किसी के मन में नहीं है।

पुरानी पीढ़ी का पालन-पोषण आज से पचास साल पहले हुआ है। नयी पीढ़ी का पालन-पोषण आज के युग में हुआ है तो संस्कार में तो अंतर आयेगा ही। लेकिन संस्कार के अंतर को लेकर दोनों समन्वय नहीं करेंगे तो किसी के मन में संतोष नहीं होगा।

आजकल कई घरों में बहुत ज्यादा कलह होता है अपने-अपने स्वार्थ को लेकर। स्वयं को ही देखा जा रहा है, दूसरे को देखा नहीं जा रहा है। यदि दूसरे को देख लिया जाये, दूसरे को सुविधा मिले, दूसरे को आराम मिले तो सबके मन में संतोष होगा, सबको आराम मिलेगा, सबको सुविधा मिलेगी। जहां पर अपने को देखा जायेगा वहां किसी के मन में संतोष नहीं होगा।

आजकल टूटन कैसे बढ़ रही है इसको एक उदाहरण से समझें। मान लो घर में बेटा-बहू हैं और घर का मालिक है जिसे माता-पिता कहें या सास-ससुर कहें। वे लोग वृद्ध हो गये हैं और बेटा-बहू जवान हैं। घर में जब कोई बढ़िया चीज आयी चाहे वह चीज खाने-पीने की हो या देखने-सुनने की हो। माता-पिता या सास-ससुर सोचते हैं कि अब तो हम लोग बूढ़े हो गये हैं, पता नहीं कब यहां से जाने का टिकट कट जाये। बेटा-बहू तो अभी जवान हैं वे बहुत दिनों तक जीयेंगे इसलिए जो कुछ चीजें घर में आयी हैं पहले हमें मिलना चाहिए। उधर बेटा-बहू सोचते हैं कि अरे, ये बूढ़ा-बूढ़ी जीवन भर खाते-पीते आये हैं, इनके मन में संतोष नहीं है तो आगे क्या संतोष होगा, इसलिए देखने-सुनने, खाने-पीने की चीजें पहले हमें मिलना चाहिए। जहां दोनों का स्वार्थ अपने लिए है वहां झगड़ा होना ही है। पेट तो भर जायेगा लेकिन संतोष किसी के मन में नहीं होगा।

यदि माता-पिता यह सोच लें कि हम तो जिंदगी भर खाते-पीते आये हैं अब हमें क्या करना है। यह

जमाना तो बेटा-बहू का है। वे लोग आनंद से, प्रसन्नता से रहें इसी में हमारी खुशी है। जो अच्छी चीज आयी है वह हमें न मिलकर बेटा-बहू को मिल जाये। और बेटा-बहू सोच लें कि माता-पिता बूढ़े हो गये हैं, उनको खाने-पीने दिया जाये। हमारी उम्र तो अभी लम्बी है। यदि जीते रहेंगे तो खाते-पीते, पहनते-ओढ़ते रहेंगे। अच्छी चीज माता-पिता को मिल जाये तो देखो कितना सुंदर प्रेम बढ़ेगा। यही है प्रेम के पनपाने का तरीका।

जब तक स्वार्थ जीता नहीं जायेगा तब तक जीवन में परमार्थ उतर नहीं सकता।

शुरू में कहा गया है कि हमारे जीवन के दो पहलू हैं एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक पहलू में, भौतिक क्षेत्र में जब तक अपने स्वार्थ को जीतकर और अहंकार को मारकर दूसरों के साथ प्रेम का व्यवहार नहीं करेंगे, सहनशील नहीं बनेंगे तब तक कितने बड़े मकान में रहें, रोज मेवा-मलाई खायें सुख से जीवन जी नहीं सकते। भले फूस की झोपड़ी में ही रहना पड़े और सूखी रोटी नमक के साथ खाना पड़े किन्तु यदि आपस में प्रेम है, सहानुभूति है, एकता है, समता है, सहनशीलता एवं संगठन है तो फूस की झोपड़ी में स्वर्ग का आनंद मिल सकता है।

स्वर्ग और नरक मरने के बाद मिलेगा, देवी-देवता की पूजा करेंगे तब स्वर्ग मिलेगा इस धोखे में न रहें। अपने घर को स्वर्ग बनाना होगा।

कहा जाता है कि स्वर्ग में देवी-देवता का निवास होता है। ऊपर माना गया जो स्वर्ग है वह काल्पनिक है। वहां कोई देवी-देवता नहीं है। आप यह समझें कि मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा समाज स्वर्गलोक है। मेरा घर देव मंदिर है। सुबह जब नींद खुले और घर में जितने भी लोग हैं मां, बहन, पुत्री, पत्नी, सास, बहू आदि को देखें तो समझें कि ये सब देवियां हैं, भगवती हैं और पिता, पुत्र, पति, भाई, ससुर आदि पर जब दृष्टि जाये तो समझें कि ये भगवान और देवता हैं। घर के सदस्यों को देवी-देवता मान कर उनके साथ सुंदर व्यवहार करें तो आपका घर देवमंदिर क्या स्वर्ग बन जायेगा। लेकिन लोग मंदिर में जाते हैं और पत्थर की मूर्ति को भगवान मानकर पूजा कर लेते हैं और पूजा करके जब घर में आते हैं तो घर के सदस्यों से झगड़ा करते हैं।

तब भगवान की भक्ति फलेगी कैसे? तीन घण्टे पूजा कर लिये मंदिर में जाकर और बूढ़ा पिता या बूढ़ी सास एक गिलास पानी मांग लिये तो चार बातें सुनाकर पानी देंगे तो मंदिर में जाकर पूजा करने से क्या होता है? असली देवी-देवता तो माता-पिता और सास-ससुर हैं। यदि उनकी सेवा नहीं की गयी तो मंदिर में जाकर पूजा करना काम नहीं आयेगा। जिन्दगी बीत जायेगी और अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा।

इसलिए किसी ने कहा है— "जिसके दिल में दया का खजाना नहीं, राम का नाम लेने से क्या फायदा। जिसने माता पिता की न सेवा किया, उसको गंगा नहाने से क्या फायदा।"

गंगा चाहे जितनी बार नहा लें यदि सास-ससुर और माता-पिता का निरादर करते हैं तो गंगा नहाना नरक में भले ही ले जायेगा स्वर्ग कभी नहीं जाओगे। यदि स्वर्ग में जाना चाहते हैं तो बूढ़े माता-पिता, सास-ससुर का सत्कार करना शुरू करें, उन्हें आदर देना शुरू करें, उनकी सेवा करना शुरू करें, उनकी आज्ञा मानना शुरू करें। आपका घर ही देव-मंदिर क्या स्वर्ग बन जायेगा।

इसलिए पहली आवश्यकता है व्यवहार को सुंदर बनाने की और इसके लिए अपने अहंकार को मारना पड़ेगा। यह भूल जायें कि मैं बहुत जानता हूं, बड़ा विद्वान हूं, बड़ा पदाधिकारी हूं, बड़ा धनवान हूं। आप कुछ भी नहीं हैं। आप सबसे पहले इंसान हैं। इंसान बनकर पैदा हुए हैं। कोई आदमी साधु बनकर, सरपंच बनकर, दुकानदार बनकर पैदा नहीं होता। आदमी पैदा होता है आदमी बनकर, इसलिए आदमीयत को समझें, अपने दिल को समझें कि मेरा दिल क्या चाहता है? मेरा दिल प्रेम चाहता है, सहानुभूति, क्षमा और दया चाहता है और यही हर आदमी का दिल चाहता है। इसलिए हर

आदमी के साथ दया का व्यवहार करें। कबीर साहेब ने कहा है—

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप॥

जहां पर दया है वहीं पर धर्म है और जहां दया नहीं है वहां पर धर्म नहीं है, अधर्म है। जहां कटुता है, विषमता है, हिंसा एवं दुर्व्यवहार है वहीं तो अधर्म है और इस अधर्म को सब पाल रखे हैं और धर्म का ढकोसला करते हैं, तो यह धर्म का ढकोसला काम नहीं आयेगा। कबीर साहेब ऐसे धर्म के ढकोसले को कभी पंसद नहीं करते।

इसलिए शुरुआत घर से ही करें और अपने घर को देव मंदिर बनाकर घर के हर सदस्य के साथ देवता तुल्य व्यवहार करें। उसके लिए अपने अहंकार को मारकर विनम्र बन जायें। जो विनम्र होता है, झुकता है वही आगे बढ़ता है, वही सीखता है और वही कुछ प्राप्त करता है।

भौतिक क्षेत्र में परिश्रम के साथ-साथ स्वार्थ और अहंकार का त्याग करके सबके साथ प्रेम का व्यवहार करना होगा। आध्यात्मिक क्षेत्र में, परमार्थ के क्षेत्र में यह समझना होगा कि आजकल में यह जीवन का दीपक बुझ जाने वाला है और सदैव-सदैव के लिए इस शरीर-संसार से, अपने माने गये कुल-कुटुम्ब से, दुनिया से नाता टूट जाने वाला है। जैसे ही आंखें बंद हुईं फिर दुनिया का कभी ख्याल नहीं होगा। आंखें बंद होते ही हमारे लिए पूरी दुनिया डूब जायेगी। कबीर साहेब ने बढ़िया कहा है—

कहहिं कबीर सुनो रे मुनिया।
आप मुये पीछे डूब गयी दुनिया॥

जैसे आंखें बंद होंगी दुनिया का संबंध सदैव के लिए छूट जायेगा लेकिन हमसे हमारा संबंध कभी छूटेगा नहीं। हम कौन हैं इस चीज को समझना होगा। हम यह शरीर नहीं हैं। शरीर तो हाड़-मांस का ढांचा है, हाड़-मांस का पिण्ड है। भौतिक तत्त्वों के योग से बन गया है और रोज-रोज बदल रहा है लेकिन इस शरीर के भीतर निवास करने वाला जो चेतन तत्त्व है, आत्म तत्त्व है, जिसे आप जीव कहें, शिव कहें, राम-रहीम कहें, आत्मा कहें आपकी मर्जी है।

कितने लोग शब्दों को लेकर लड़ते हैं कि आप जीव कहें तब तो ठीक है, आत्मा कहेंगे तो आप भटक गये हैं। जीव, शिव, आत्मा, राम, रहीम ये तो नाम हैं। आप पानी पीयें, जल पीयें, नीर पीयें, वाटर पीयें फर्क क्या पड़ता है। पहले के ऋषि-मुनि कभी पानी पीते ही नहीं थे क्योंकि संस्कृत साहित्य में पानी शब्द ही नहीं है। संस्कृत में जल है, नीर है, तोय है, लेकिन अर्थ में कोई फर्क तो नहीं हुआ।

ऐसे ही राम, रहीम, चेतन, जीव, आत्मा इन शब्दों को लेकर लड़ने की आवश्यकता नहीं है। लड़ें न, तथ्य को समझें। शब्द तो बनते और बिगड़ते रहते हैं। देश और काल के आयाम में नये-नये शब्द बनते हैं और पुराने-पुराने शब्द खारिज होते चले जाते हैं। शब्दों को लेकर लड़ने वाला व्यक्ति तथ्य को समझ नहीं पाता है।

शरीर के भीतर रहने वाला जो चेतन तत्त्व है वह हमारा असली स्वरूप है। वह हमारा अपना आपा है और उसका हमें जरा भी ख्याल नहीं होता है। जिन्दगी भर शरीर को संवारते रह गये और शरीर को संवारते-संवारते शरीर में रहने वाला जो शिव तत्त्व है उधर ध्यान गया ही नहीं।

यह शरीर तो शव है, शव का अर्थ है मुरदा, लाश। यह शरीर जिन्दा लाश है। इसमें शिव-आत्मा निवास कर रहा है इसलिए यह मंगलमय दिखाई पड़ता है। जैसे ही जीव निकल जाता है वैसे ही यह शरीर किसी काम का रह नहीं जाता है। अपना जो आत्म तत्त्व है उस आत्म तत्त्व को समझना होगा और उसे भवबंधनों से छुड़ाने के लिए प्रयत्न करना होगा। भवबंधन छुटेगा कैसे? पहले यह समझें कि भवबंधन क्या है? लोग कहते हैं कि हमें भवसागर से पार होना है। भवसागर कहां है जिसे पार होना है। कौन-सी नाव है, कौन-सा

जहाज है जिस पर बैठकर आपको भवसागर पार करना है। बाहर कहीं भवसागर नहीं है। बाहर ऐसी कोई नाव नहीं है जिसमें बैठकर भवसागर को पार होना है। सद्गुरु कबीर ने एक साखी में कहा है—

इच्छा करि भवसागर, जामें बोहित राम अधार।
कहैं कबीर हरि शरण गहु, गौ खुर बछ विस्तार॥

(बीजक, रमैनी साखी-20)

इच्छा करके आदमी भवसागर बनाता है। हमारी जो इच्छाएं हैं, देखने-सुनने की, खाने-भोगने की, पाने की, कुछ बनने की, ये इच्छाएं ही हमारे लिए भवसागर का निर्माण करती हैं। इच्छाओं और वासनाओं को छोड़कर अलग और कहीं भवसागर नहीं है जिसे तैरना होगा। हर आदमी अपने मन की धारा में, अपनी वासनाओं की धारा में ही डूब रहा है और उसी को ही पार करना है। उसके लिए बाहर कोई जहाज नहीं है। 'जामें बोहित राम अधार' साहेब कहते हैं वह बोहित, वह जहाज है राम का आधार। वह राम बाहर का राम नहीं है, अंतरात्मा है। कबीर साहेब ने बार-बार कहा है कि 'दिल में खोजि दिलहिं माँ खोजो, इहै करीमा रामा।' (बीजक, शब्द-96), हृदया बसै तैहि राम न जाना (बीजक, रमैनी-41)।

हृदय में बसने वाला जो राम तत्त्व है उसको आदमी नहीं जानता है। राम को बाहर खोजता है। साहेब ने कहा है—

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढै बन माहिं।
तैसे घट घट राम है, दुनिया जानत नाहिं॥

कस्तूरी मृग की नाभि में ही रहती है। उसको सुगंध वहीं से ही आती है लेकिन मृग सोचता है कि कस्तूरी कहीं बाहर है, सुगंध कहीं बाहर से आ रही है इसलिए वह जंगल-जंगल घूमता फिरता है और खोजते-खोजते जीवन बीत जाता है कस्तूरी मिलती नहीं। ऐसे ही राम को, परमात्मा को, शिव को, भगवान को, मोक्ष को अपने से अलग बाहर खोज रहे हैं। बाहर खोजते-खोजते पूरा जीवन बीत जाता है लेकिन राम मिल नहीं पाता। राम को पाना नहीं है किन्तु राम को जानकर वासनाओं का त्याग कर देना है और आत्मस्थित हो जाना है, बस राम मिला मिलाया है।

एक बात का ख्याल जरूर रखें। दुनिया में हर चीज खो सकती है लेकिन राम कभी खो नहीं सकता, मोक्ष कभी खो नहीं सकता है क्योंकि वह खोने वाली चीज ही नहीं है। राम तो आपका होना है, आपका स्वरूप है, आप स्वयं राम रूप हैं। सद्गुरु श्री रामरहस साहेब ने कहा है—राम रूप मय परम पुनीता।

हर जीव रामरूपमय है और परम पवित्र है। लेकिन मन लगा है अपवित्र भोगों में, अपवित्र शरीर-संसार में इसलिए अपनी पवित्रता का, निर्मलता का, स्वतंत्रता एवं निर्बंधता का बोध नहीं हो पाता है। अपवित्र संसार-शरीर में जो आसक्ति लगी हुई है उस आसक्ति को त्यागकर राम में अपने मन को जोड़ना है।

जैसे समुद्र के पास जायें और किनारे पर समुद्र की तरफ मुख करके खड़े हो जायें जहां तक दृष्टि जायेगी वहां तक पानी ही पानी दिखाई पड़ेगा। दूर ऐसे लगता है कि पानी और आकाश एक में मिल रहे हैं। लेकिन समुद्र की तरफ पीठ कर लें और थल की तरफ मुख कर लें फिर आपको धरती और पेड़-पौधे, घर-मकान आदि दिखाई पड़ेंगे।

ऐसे ही एक तरफ राम है और एक तरफ संसार है। जब तक संसार की तरफ मुंह रहेगा तब तक राम को समझ नहीं पायेंगे। "जहाँ काम तहाँ राम नहीं, जहाँ राम नहीं काम। कबहूँ दोनों होत नहीं, रवि रजनी एक ठाम॥" जहाँ काम है वहां राम नहीं है और जहां राम है वहां काम, वासना, संसार नहीं है। काम अर्थात शरीर-संसार, दुनियादारी, राग-रंग का मोह, अहंता-ममता का त्यागकर मन को अंतर्मुख-आत्मलीन कर लेना ही राम को, शिव को, आत्मतत्त्व को पाना है। वह हर व्यक्ति का अपना आपा, अपना अस्तित्व है। आत्मलीनता ही राम में, शिव में, ब्रह्म में, खुदा-गॉड में लीन होना है। और यही परमार्थ है।

—धर्मेन्द्र दास

लघु कहानी

बेरोज़गार टी स्टाल

लेखक—दिनेन्द्र दास

आनंद ने मुझसे बड़े रौब से कहा था—मैंने एम. टेक किया है साहब! छोटी-मोटी नौकरी मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है, वैसे चपरासी, लिपिक, शिक्षक, पुलिस एवं पटवारी की नौकरी की नियुक्ति हो गयी थी लेकिन मैंने ज्वाइन नहीं किया।

पांच साल बाद मैंने आनंद से पूछा, "कहो आनंद, क्या हाल है, आजकल आनंद से हो!" तब आनंद ने सिर झुकाकर मुंह लटकाए कहा—"मैंने ऊंची कक्षाएं पास की, अनेकों प्रतियोगी परीक्षा दिलाई पर कुछ भी हाथ नहीं लगा। खोदा पहाड़ निकली चुहिया जैसी मेरी हालत हो गयी है साहेब! मां-बाप कहते हैं हमने तुझे जमीन बेचकर पढ़ाया है, अब कब तक बैठे-बैठे खाते रहोगे। मुझे पढ़ा-लिखा और योग्य समझकर एक धनी-मानी व्यापारी ने अपनी लड़की मेरे साथ ब्याही। मेरी पत्नी लबली बड़े घर की बेटी होने की वजह से उसकी तरह-तरह की ख्वाहिशें हैं। उसने तो मेरा नाको दम कर दिया है। मेरा तो अब जीना हराम हो गया है साहेब! मन होता है खुदकुशी कर लूं।" कहते हुए आनंद फफककर रो पड़ा।

मैंने आनंद के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'आनंद, घबराओ मत! बादल को छटते देर नहीं लगती। कभी धूप तो कभी छांव। अपने अंदर की शक्ति को जगाओ, सरकारी नौकरी सीमित है और सबको मिलती भी नहीं है। पुरुषार्थ करो, सफलता तुम्हारे कदम चूमेगी। तुम यदि लगन से मिट्टी बेचना शुरू करोगे तो एक दिन मिट्टी सोना उगलेगी और यदि कहीं आलसी बनकर सोना बेचोगे तो सोना मिट्टी बन जायेगा। यदि मेरी बात मानोगे तो मैं तुझे एक सुझाव दूं।"

उसने आंसू पोंछते हुए कहा—"बताइए साहेब जी, क्या सुझाव है?"

मैंने कहा—"पहली बात यह है कि तुम्हारे पास जितनी डिग्रियां हैं उन्हें ताक पर रख दो अर्थात अपने मन से उनका अहंकार निकाल दो कि मैं इतना पढ़ा-लिखा आदमी हूं। फिर कहीं चौराहे पर एक लारी में चाय की दुकान खोल लो, साथ में कुछ बिस्कुट, नमकीन रख लो फिर देखना कुछ दिनों में तुम्हारे पास लक्ष्मी दौड़ी चली आयेगी।"

आनंद ने अपनी नई जिंदगी की शुरुआत अपने ही महाविद्यालय के सामने एक लारी में 'बेरोजगार टी स्टाल' नाम से की। उसके प्रोफेसर भी लारी में बैठकर चाय की चुस्की लेते थे। पत्नी लबली ने भी आनंद का कदम से कदम मिलाकर साथ दिया। धीरे-धीरे दुकान को बढ़ाते गये, ग्राहक बढ़ते गये और देखते ही देखते पूरे शहर से बड़ी-बड़ी पार्टियों में नमकीन, मिठाई, भोजन आदि के लिए आर्डर आने लगे और उसने दुकान के विस्तार के लिए कई मजदूर रख लिये।

बीस साल बाद उसकी प्रसिद्धि पूरे शहर भर में हो गयी। आनंद ने एक निश्चित तिथि में मुझे आमंत्रित किया। मैं वहां गया। वहां का दृश्य देखकर मेरी आंखें चौंधिया गयीं। आनंद ने खुशी से उछलते हुए कहा—"आपकी कृपा से यह बेरोजगार फाइव स्टार होटल है साहब! आज सायंकाल इसका उद्घाटन आपके ही कर-कमलों द्वारा होगा।"

मैंने उसकी पीठ को थपथपाते हुए कहा—एक बेरोजगार पुरुषार्थी व्यक्ति बेरोजगार टी स्टाल लारी वाला आनंद आज बेरोजगार फाइव स्टार होटल का मालिक बन गया।

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरे पियास॥

(बीजक, साखी 277)

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

प्रकृत्ति सदैव रसदार है। वह अपने रस से सृष्टि को गीली रखती है और इसी के मोह में फंसकर जीव अपने स्वरूप को नहीं समझता है और प्रकृति में मोह कर स्वरूप-स्मरण, स्वरूप-रमण एवं स्वरूप-स्थिति से दूर रहता है। यही दुख का कारण है। जो विवेकवान प्रकृति और उसकी विकृति-सृष्टि-जगत का मोह पूर्णतया छोड़ देता है, वह स्वस्वरूप में स्थित होता है। आप चाहे जितनी माया जोड़ लें, वे देह रहते-रहते छूटती रहेंगी और देह छूटने के बाद सबसे विदाई हो जायेगी। इसी छूटने वाली माया के मोह में उलझकर स्वरूप-स्थिति से अलग रह जाता है, जो दुखद है।

* * *

सत्य में दृढ़ रहना चाहिए। पात्र देखकर सत्य कहना चाहिए। सभा में भी सत्य कहना चाहिए, परंतु जितना संभव हो उसे मीठा बनाकर कहना चाहिए। सत्य के भी ग्राहक हैं। संसार सत्य के जिज्ञासुओं से शून्य नहीं है। स्वयं नित्य सत्य में रहना चाहिए। सत्य मैं हूं। मैं में स्थित रहना सत्य का परम आचरण है। देह, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार आदि अनात्म हैं, अतएव छूटने वाले विकारी, नश्वर हैं। मैं शुद्ध चेतन हूं। मेरे में विकार नाम की वस्तु नहीं है। मैं सदैव निर्विकार हूं। अपने निर्मल आत्मस्वरूप में निरंतर लीन रहना सच्ची समझदारी है। इस सम्बन्ध में कुछ स्थिर नहीं है। स्थिर तो मैं द्रष्टा चेतन हूं। मेरे सामने सारा दृश्य आकर चला जाता है। मैं स्वतः परम तृप्त हूं।

* * *

उनका जीवन धन्य है जो किसी प्रकार जनता की सेवा करते हैं। शरीर सबका वृद्ध होता है, रोगी भी हो जाता है और छूटना तो पक्का ही है। परंतु जिसने जीवन में पर-सेवा की और अपने मन को शांत किया वह धन्य हो गया।

जो लोग अभी शरीर में हैं, उन्हें मरने वालों की घटना से शिक्षा लेना चाहिए। आज-कल में हमारा अपना माना हुआ कुछ भी नहीं रहेगा, क्योंकि अपना शरीर ही नहीं रहेगा। लोग इस परम सत्यता पर ध्यान नहीं देते हैं, इस बात को लेकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए, अपितु हमें स्वयं इस सत्यता को पूर्ण हृदयंगम करना चाहिए। हमारा काम होगा, अपने मन को निर्मोह करने से, दूसरों की मनोदशा देखने से नहीं।

* * *

धन-जन का अधिक लाभ लेने के लिए धार्मिक कहे जाने वाले लोग चमत्कारी बातें तथा ऋद्धि-सिद्धि देने की बातें करते हैं जो पूरी-की-पूरी छल-कपट भरी होती हैं। इस रवैया से जिज्ञासु एवं मुमुक्षु को असत्य सूचना मिलती है और वह बोध तथा रहनी में भी दिग्भ्रमित होकर भटकता है। सत्य कथन से सबको निर्देश मिलता है और जो व्यक्ति जितना श्रम करता है उतनी आध्यात्मिक उन्नति करता है। जब बोध ही अशुद्ध हो जाता है तब सब कुछ बिगड़ जाता है। इसी से पारख सिद्धांत की निष्पक्ष लोग प्रशंसा करते हैं। सत्य बोध, सत्य रहनी, सत्य वचन और सत्य व्यवहार से ही जीव का कल्याण है।

* * *

जीवन उसी तरह अखोज हो जाता है जिस तरह राई का दाना समुद्र में गिरने के बाद उसकी खोज करना असंभव है, किंतु जड़ और चेतन दोनों की सत्ता अक्षुण्ण है। मैं से मैं कभी अलग नहीं होता।

सिनेमा की रील घूम रही है और परदे पर दृश्य दिखाई देते हैं—समुद्र लहरा रहा है, रेगिस्तान का विशाल क्षेत्र दिख रहा है, जंगल का घनघोर दृश्य है, पानी बरस रहा है, भयंकर आग लगी है और मकान जल रहे हैं, मनुष्यों की भीड़ है, जानवरों की भीड़ है;

परंतु रील बंद हुई; तो सब दृश्य खो गया। यही दशा जीवन की है। हमारे सामने प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों और अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओं के दृश्य आते हैं, अंततः सब खो जाता है। रह जाता हूं, अपने आप केवल 'मैं'। अतएव मैं की स्थिति, स्वरूप-स्थिति को ही दृढ़ करना चाहिए जिससे सारे दुखों का अंत हो। मनुष्य जिन सांसारिक उपलब्धियों को अपना धन मानता है, वह उसका नहीं है। उसका तो परम धन आत्मशांति ही है। तस्मात्, स्वरूपस्थिति दृढ़ करो।

* * *

मन स्वरूपबोध द्वारा जब पूर्ण तृप्तकाम हो जाता है, तब सबसे चित्त हट जाता है और किसी से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। प्रयोजनशून्य होने पर न किसी से राग रहता है और न द्वेष रहता है। ऐसा उच्च आध्यात्मिक मन पूर्ण शांत हो जाता है। यही जीवन का फल है। जहां तक प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों का संबंध है, सब क्षणिक है। यह सब स्वप्न की तरह आता-जाता रहता है। साधक को चाहिए कि संसार से दृढ़ वैराग्य करे जिससे वर्तमान में ही सबकी सारी कामनाएं छूट जायें। संसार की कामना करना मन का धोखा है। कामना के जाल में उलझे हुए अब तक दुख के अलावा कुछ नहीं पाये हैं। इस छूटने वाले शरीर और संसार की सारी कामनाएं छोड़कर ही मुक्ति का आनंद मिलेगा।

* * *

अपने माने गये शरीर तथा दूसरों के शरीर पर पड़े वस्त्रों और आभूषणों के आवरण नकली हैं। यह सब तुम नहीं हो और न ये तुम्हारे हैं। इन्हें हटा देने पर चाम का लपेट है। इसे हटा देने पर रक्त और पानी से लिबलिबे मांस के लोथड़े हैं जिनमें मोटी-पतली नसों का जाल है। इन्हें हटा देने पर हड्डियों का ढांचा है। इसके भीतर मल और मूत्र के थैले लटके हैं। सोचो जिसे तुम अपना स्वरूप मानते हो, वह कितना धोखा है! अनात्म तो है ही अशुचि, अनित्य, क्षणभंगुर और दुखपूर्ण भी है। तुम तो शुद्ध चेतन हो, जो तुम्हारा अपना होना है, आत्मा है। वह निर्मल है। सारा संबंध असत है, क्षणिक है। किसी भी संबंध में अपने को मत मिलाओ। असंग, असंग, असंग।

* * *

मनुष्य को कम ज्ञान है कि अधिक इसका महत्त्व नहीं है। यदि उसका मन हानि-लाभ की मान्यता में अधिक नहीं डूबता है, तो वह सुखी रहेगा।

सब समय अनात्म तन-मन से निस्पृहता का जप है और आत्म-अनुरक्ति प्रगाढ़। ऐसी स्थिति में कौन दुख है? मेरा मेरे अलावा कुछ है ही नहीं, तब चिंता किसकी? क्या छूटने का भय? छूटना कुछ है ही नहीं। पका नारियल खोल छोड़ देता है। कच्चा नारियल खोल से चिपका रहता है। विवेक में पका अनासक्त मन देहा-ध्यास को पूर्णतः छोड़ देता है इसलिए वह सदा मुक्त रहता है। देहाध्यास में चिपका मन बंधा रहता है। मन का पूर्ण निर्मोह रहना मोक्षदशा है। मोह भ्रम से होता है। कचड़े की टोकरी, दुखों की खान शरीर में मोह होने का हेतु भ्रम ही है। विवेक से भ्रम समाप्त हो जाता है।

* * *

हमारे मन की प्रतिक्रिया हमारी दुर्बलता है। किसी ने हमें बुरा समझा, बुरा कहा, तो उसके विषय में हमारे मन में प्रतिक्रिया उठना हमारे अहंकार का परिणाम है। हम उसके विषय में इतना ही समझ लें कि उसने हमें जैसा समझा, वैसा माना और कहा। उसका दोष ही क्या है! सबकी समझ पृथक-पृथक है। हमने यदि अपने को ठीक से समझा है और सब समय अपने को ठीक दशा में रखते हैं, तो इससे ही हमारा कल्याण है, न कि दूसरे की हमारे विषय में मान्यता कल्याणदायी है। अपनी मनसा क्रिया का ही सबको फल मिलता है दूसरे की अवधारणा का नहीं। अपने को ठीक से समझना, ठीक से रखना, हर समय अपना मन निर्मल, स्वरूपस्थ रखना कल्याणदायी है। साधक निरंतर अपने को देखता है, दूसरों की अपने विषय में मान्यता को नहीं। ❑

बीजक चिंतन

सभी की भूल-व्याधि की औषध परख है

शब्द-115

सन्तो ऐसी भूल जग माहीं, जाते जीव मिथ्या में जाहीं॥
पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित, झाँई आपुहि मानी॥
झाँई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी॥
अभिमानी कर्ता होय बैठे, नाना ग्रन्थ चलाया॥
वोही भूल में सब जग भूला, भूल का मर्म न पाया॥
लख चौरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया॥
जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहि खाया॥
भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई॥
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई॥

शब्दार्थ—भूल=विस्मय, भ्रम, चूक, दोष। मिथ्या=असत्य। पहिले=पहले, शुरू में, पुराकाल में। झाँई=झांईं, परिछाईं, धोखा, माया। कर्ता=जगत का रचयिता, जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण। बिटमाया=भ्रम एवं छल किया, निर्माण किया। सनातन=नित्य, अनादि चेतन जीव। खाया=दुर्बल किया, खोखला किया। पारखी=जड़-चेतन एवं गुण-दोषों का विवेकी। पारख=परख, परीक्षा, जड़-चेतन एवं गुण-दोषों के ज्ञान की शक्ति, ज्ञान।

भावार्थ—हे सन्तो ! संसार में ऐसी भूल है जिससे जीव असत्य एवं भ्रांति की धारा में बह जाता है ॥ 1 ॥ आध्यात्मिक क्षेत्र में पहली एवं बढ़-चढ़ कर भूल उनकी है जिन्होंने यह माना कि मैं अखण्ड ब्रह्म हूं और यह सारा जगत मेरी परिछाईं है। अर्थात मैं ही जगतरूप में भासता हूं॥ 2 ॥ इस प्रकार अपनी मानी हुई परिछाईं-माया में भूलकर यह माना कि मैं ही इच्छा करके एक से अनेक हो गया हूं और संसार बन गया हूं। फिर इस अनेकता की इच्छा को लेकर वह जगत के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण का अहंकारी बन गया॥ 3 ॥

इस प्रकार विश्वाभिमानी अपने आप को जगत का कर्ता मान बैठा और इन भ्रामक मान्यताओं से नाना ग्रन्थों की रचना की गयी॥ 4 ॥ फिर ऐसे ग्रन्थों को पढ़-सुनकर सारा संसार भूल गया। इस भूल का रहस्य कोई नहीं समझ सका॥ 5 ॥ जीव निजस्वरूप की भूल से ही चौरासी लाख योनियों में भटकते हैं, क्योंकि भूल से जगत के लोग छले गये हैं, अथवा भूल से ही जीव ने अपने मनोमय जगत का निर्माण किया है॥ 6 ॥ जो अनादि सनातन चेतन जीव है वह स्वयं अपने को भूला है। वही भूल उसे अब खोखला बना रही है ॥ 7 ॥ यह भूल तभी मिटेगी जब पारखी संत मिलेंगे और वे कृपाकर पारख लखा देंगे ॥ 8 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई ! सबके स्वरूप-भूलरूपी रोग को दूर करने के लिए पारख ही औषध है॥ 9 ॥

व्याख्या—बीजक में यह दूसरा 'शब्द' प्रकरण ग्यारहों प्रकरणों में बड़ा है। इसमें 115 शब्द हैं, जिनमें एक-से-एक महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त हुए हैं। इस बृहत् प्रकरण के अन्त में सद्गुरु ने अपने सारे विचारों को नौ पंक्तियों में कह डाला है। इस पूरे शब्द में मुख्य दो बातें हैं—भूल तथा भूल की औषध। सद्गुरु पहली पंक्ति में कहते हैं—"सन्तो ऐसी भूल जग माहीं, जाते जीव मिथ्या में जाहीं।" हे सन्तो ! संसार में ऐसी भूल है जिससे जीव असत्य-पथ में भटक गया है। हर मनुष्य की जिंदगी में सारे दुखों का कारण मात्र एक है—भूल। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी न समझकर उसके विपरीत समझना भूल है। सारे दुखों का कारण ठीक से न समझना है। यदि हम तथ्य को समझ जायें तो सारे दुख मिट जायें। यह प्रश्न किया जा सकता है कि कितने लोग ऐसे हैं जो तथ्य को तो ठीक से समझते हैं, परन्तु दुखी हैं। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि उनका तथ्य का समझना नहीं माना जा सकता। केवल बौद्धिक ढंग से समझ लेना पर्याप्त नहीं है। जो हृदय से तथ्य को समझ लेता है वह कहीं भी विचलित नहीं होता। जो विचलित होता है वह तथ्य को कहां समझता है ! अतएव सारे दुखों का कारण भूल है, अज्ञान है।

"पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित, झाँई आपुहि मानी।" अध्यात्म क्षेत्र की यह पहली एवं भारी भूल है कि मैं अखण्ड ब्रह्म हूं और जगत मेरा प्रतिबिम्ब एवं आभास है, यह जगत और मैं जल-तरंग, स्वर्ण-भूषण, घट-मृतिका-न्याय एक हूं। जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मैं ही हूं, मैं ही कभी 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेयेति' अर्थात मैं एक बहुत प्रजा के रूप में हो जाऊं, ऐसी इच्छा कर जगत बन गया हूं इत्यादि यह सब धारणा ब्रह्मज्ञान का घोर दुरुपयोग है। मैं अखंड ब्रह्म हूं, इसका अभिप्राय इतना ही है कि मैं अविनाशी चेतन हूं। अखंड उसे कहते हैं जो कभी टूटता न हो और वही अविनाशी है। ब्रह्म का अर्थ होता है बड़ा ! यह चेतन ही तो बड़ा है। जड़-तत्त्व एवं जड़-कार्य पदार्थ चाहे कितने बड़े हों परन्तु महत्त्व में चेतन ही बड़ा होता है। अतएव अखंड ब्रह्म का सरल अर्थ है अविनाशी चेतन। ब्रह्मवादी कहे जाने वाले महापुरुषों ने उसके लिए भ्रमवश अनेक अतिशयोक्तिपूर्ण विशेषण लगाये तथा अपने शुद्ध स्वरूप को ठीक से न समझने के कारण उन्होंने उसके विषय में अन्यथा चर्चा की।

ब्रह्म को अद्वैत होना चाहिए, तो इसके लिए लोगों ने सोचा कि यह जगत है ही नहीं; क्योंकि यदि जगत की सत्ता स्वीकारी जायेगी तो ब्रह्म अद्वैत नहीं रह जायेगा, किन्तु एक ब्रह्म तथा दूसरा जगत हो जायेगा; परंतु जगत, जो सत्य और सामने है उसको अद्वैतवाद की फूंक से उड़ाया भी नहीं जा सकता। इसलिए कहा गया कि जगत तो ब्रह्म की परिछाईं है। मैं ब्रह्म हूं और यह जगत मेरी परिछाईं है। जैसे प्रतिबिम्ब बिंब से अलग नहीं होता, उसके अलग अस्तित्व का केवल आभास होता है वैसे जगत ब्रह्म से अलग नहीं है, केवल आभास होता है कि जगत अलग है। ब्रह्म-जगत की एकता का सिद्धांत गढ़ा गया और इसके लिए कई प्रमाण खड़े किये गये। कहा गया कि जैसे जल और उसकी तरंगें एक हैं, जैसे स्वर्ण और उससे बने आभूषण एक हैं तथा जैसे मिट्टी और उससे बने बरतन एक हैं, वैसे ब्रह्म और ब्रह्म से बना जगत एक है। यह भी ध्यान नहीं रखा गया कि जब ब्रह्म को एक तरफ अखंड एवं निर्विकार कहते हैं तब उससे किसी प्रकार का निर्माण कैसे संभव है ! अखंड निर्विकार ब्रह्म से परिवर्तनशील विकारी जगत कैसे बन जायेगा ! सत-चिद्-आनन्द ब्रह्म से असत-अचिद्-अ-आनंद जगत कैसे निर्मित होगा। यह भी कहा गया कि जगत ब्रह्म का स्वप्न है, परन्तु स्वप्न द्वैत के बिना कभी नहीं हो सकता। जाग्रत जगत को देख, सुन, भोग कर सोते समय अर्धसुषुप्ति में स्वप्न होता है। एक अद्वैत में स्वप्न नहीं हो सकता। इन सारी बातों पर आप "जो पै बीज रूप भगवान" शब्द 67 की व्याख्या में विस्तारपूर्वक पढ़ आये हैं।

"झाँई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी।" ब्रह्मवादी लोगों ने अपने मन की भ्रांतिरूपी झांईं में भूलकर जगत बनने की इच्छा कर डाली और यह अभिमान कर लिया कि जैसे तरंगों का अधिष्ठान समुद्र है वैसे अनंत विश्व-ब्रह्मांड का अधिष्ठान मैं हूं। इसी मिथ्या अभिमान का फल हुआ कि वे जगत के कारण-कर्ता बनकर बैठ गये। एक तरफ कहते हैं कि जगत है ही नहीं, और दूसरी तरफ कहते हैं कि जगत का कारण एवं कर्ता मैं ही हूं। व्यक्ति की अपनी आत्मा की सर्वोच्चता महान है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि यह आत्मा ही चांद-सूरज तथा विश्व-ब्रह्मांड है। ब्रह्मवादियों ने भ्रम में पड़कर ब्रह्मज्ञान को तमाशा बना डाला है। कितने ब्रह्मज्ञानी कहलाने वाले लोग भूल के वश होकर एक मानसिक सनक में उतर आये और कहने लगे कि मैं ही चांद हूं, मैं ही सूर्य हूं, मैं ही अनन्त विश्व-ब्रह्मांड हूं। "अभिमानी कर्ता होय बैठे" यह वाक्य उन्हीं पर व्यंग्य है। ब्रह्मज्ञान होने पर जहां सारा अभिमान छोड़ना चाहिए था, वहां वे सारे अभिमान को अपने ऊपर धारण कर लिये। जब जीव अज्ञान में रहता है तब वह मानता है कि मैं देह हूं; परंतु तथाकथित ब्रह्मज्ञान के अनुसार जब जीव ब्रह्मज्ञानी हो जाता है तब मानता है कि मैं अनन्त विश्व-ब्रह्मांड हूं। ऐसे लोगों के लिए सद्गुरु का यह वचन कितना मार्मिक है— "अभिमानी कर्ता होय बैठे" इसमें 'बैठे' शब्द अधिक चुभने वाला है। "पानी कुल्ला भर नहीं, नाम गंगाधर" यह कहावत ऐसे लोगों के प्रति ही सटीक है। निर्माण एक नये बाल का नहीं कर सकते और मान लिये कि मैं समस्त विश्व का कारण एवं कर्ता हूं।

इस भ्रांति को लेकर "नाना ग्रन्थ चलाया" बहुत पुस्तकें बनीं और उन्हें पढ़-पढ़कर लोगों का दिमाग खराब होने लगा। जो अपने पीठ पीछे की बात नहीं जानते वे सारे विश्व के नियंता, सर्वव्यापक और जगत के कारण-कर्ता होने का दंभ करते हुए घूमने लगे। विद्वान कहे जाने वाले लोगों द्वारा कहा जाने लगा कि यह ब्रह्मज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है। कहना न होगा कि ब्रह्मज्ञान के नाम पर महान भ्रांति खड़ी हो गयी। इसीलिए विवेकवान संतों को ब्रह्म को भ्रम कहना पड़ा। ब्रह्म शब्द अपने आप में बड़ा उच्च, शुद्ध एवं प्यारा है, परंतु ब्रह्मवादियों द्वारा उसकी परिभाषा ऐसी गड्डमड्ड कर दी गयी कि विवेकवानों को उसे भ्रम कहना पड़ा।

साहेब कहते हैं—"वोही भूल में सब जग भूला, भूल का मर्म न पाया।" इस अद्वैतवाद कहे जाने वाले ज्ञान में सारा जगत भूल गया। "सब जग भूला" का लाक्षणिक अर्थ है अध्यात्म के क्षेत्र में अधिक लोगों के मन में यह भ्रांति खड़ी हो गयी कि सब कुछ एक ही ब्रह्म है—यही सच्चा ज्ञान है। लोग यह नहीं समझ सके कि यह भूल के और गहरे गर्त में चले जाना है।

"लख चौरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया।" जीव अपने स्वरूप को भूलकर ही चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है। यहां चौरासी लाख भारतीय मान्यतानुसार कहा गया है। हो सकता है सभी खानियां चौरासी लाख हों, उनसे अधिक हों या उनसे कम हों। तात्पर्य इतना ही है कि जीव संसार-सागर में इसलिए भटकता है कि वह अपने असंग एवं निर्विकार स्वरूप को नहीं समझता। यह जीव अपने पूर्णकाम स्वरूप को न समझकर ही जगत में छला जा रहा है। 'बिटमाया' का अर्थ छला जाना भी किया जा सकता है तथा निर्माण करना भी। अर्थात जीव अपनी स्वरूप-भूल से छला गया अथवा स्वरूप-भूल से उसने जगत बनाया। यहां जगत बनाने का तात्पर्य होगा, अपना मनोमय जगत, माना हुआ जगत।

"जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहि खाया।" जो सनातन जीव है वही भूला है। पीछे उसकी अपनी स्वरूप-भूल ही उसे खोखला कर रही है। जीव जैसा नहीं है वैसा अपने आप को मान रहा है और जैसा है वैसा समझ नहीं रहा है। यही दुखों का कारण है।

बाहर का संसार जो जैसा है उसे वैसा समझने के लिए तथा अपनी आत्मा, अपनी चेतना जैसी है उसे उसी ढंग से समझने के लिए अर्थात जीव के स्वरूप की वास्तविकता समझने के लिए आवश्यक है 'पारख'। सद्गुरु कहते हैं—"भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई। कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई।" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि भूल अवश्य मिटेगी, परंतु जब पारखी गुरु मिलेंगे और पारख लखा देंगे। अर्थात वे वस्तुपरक तथा आत्मपरक बुद्धि देकर विवेक की आंखें खोल देंगे। संसार को समझने के लिए संसार का अध्ययन करना चाहिए तथा अपनी आत्मा को समझने के लिए अपनी आत्मा का ही अध्ययन करना चाहिए। सबकी भूल-व्याधि मिटाने के लिए पारख ही औषध है। पारख एवं परीक्षा जिसे वस्तु-विवेक भी कह सकते हैं। इसके लिए शास्त्र, गुरु, परंपरादि समस्त पक्षपातों का त्याग करना पड़ता है। पक्षपात एवं पूर्वग्रह-विहीन दृष्टि ही पारख ग्रहण कर सकती है।

कबीर साहेब ब्रह्मवाद को जहां कहीं लेते हैं उसकी गहरी आलोचना करते हैं। इसका कारण है उसके प्रति आत्मीय भावना। कबीर साहेब स्वसत्ता को ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं जिसको वे जीव, चेतन, पारख तथा राम शब्दों से ज्यादा याद करते हैं। ब्रह्मवादी भी स्व-सत्ता को ही सर्वोच्च कहते हैं जिसको वे आत्मा एवं ब्रह्म कहते हैं। शब्द तो दोनों के आदरणीय हैं। आत्मा का अर्थ ही है स्वयं तथा ब्रह्म का अर्थ है श्रेष्ठ, जो जीव एवं चेतन है। उसी को पारख तथा राम कहा जाता है। शब्दों की कोई बात नहीं है, बात है परिभाषा की। ब्रह्मवादी कहे जाने वाले महानुभाव ब्रह्म की परिभाषा अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रामक करने लगते हैं, इसलिए कबीर साहेब उनकी उस गलत परिभाषा का खंडन करते हैं।

कहा जाता है कि चेतन व्यापक है; परन्तु यह केवल महिमापरक शब्द है। संसार में गुण-धर्मयुक्त कोई अखंड

द्रव्य ऐसा नहीं है जो व्यापक है। एक अखंड द्रव्य सर्वत्र व्यापक हो तो गति, स्फूर्ण एवं संसार रहेगा ही नहीं। इसलिए कोई भी जड़ या चेतन द्रव्य व्यापक नहीं है। अतः व्यापक केवल महिमापरक शब्द है।

चेतन एक है। यह कथन गुणपरक है न कि संख्यापरक। यदि चेतन संख्या में एक ही हो तो भिन्न मत होना तथा संसार का होना ही संभव नहीं है। प्रत्यक्ष है कि चेतन असंख्य हैं। वस्तुतः चेतन व्यक्तित्व में असंख्य हैं तथा गुण में एक। अर्थात सभी चेतन जीव एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं, परन्तु सबका गुण एक ज्ञान है। अतएव गुण में चेतन एक है, संख्या में अनेक हैं। इसलिए चेतन एक नहीं है, अपितु सबका गुण ज्ञान एक है।

चेतन अद्वैत है यह कथन समाधिपरक एवं स्वरूपस्थितिपरक है। परन्तु ज्ञानियों ने इस अद्वैत शब्द का बहुत दुरुपयोग किया है। उन्होंने सारा जड़-चेतन एक में मिलाकर सब कुछ एक सिद्ध करने का मिथ्या प्रयास किया है। यहां तक कहा कि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और सृष्टि। अब पुनः अद्वैत आत्मा बनने के लिए पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में तथा आकाश को आत्मा में मिला दें, बस एक आत्मा हो जायेगा। आप जानते हैं कि केवल मिट्टी को पानी में मिलाकर देखें तो कालांतर में पानी के भाप बनकर उड़ जाने पर मिट्टी शेष रह जायेगी। सारे जड़-प्रपंच को शुद्ध चेतन आत्मा में से निकलना तथा पुनः उसी में समाना मानना कितना भ्रम है, यह सहज समझा जा सकता है। वस्तुतः जड़ तत्त्व अनेक हैं। एक-एक जड़ तत्त्व में असंख्य परमाणु हैं। इस प्रकार कारण-कार्य जड़ तत्त्व विकारी एवं परिवर्तनशील हैं। आत्माएं उससे सर्वथा भिन्न तथा शुद्ध चेतन हैं। वे निर्विकार एवं पूर्ण हैं। अतएव वासनाओं को छोड़कर निजस्वरूप में स्थित हो जाने पर अकेलापन हो जाता है, यही अद्वैत है। जब तक संकल्प हैं तब तक द्वैत है और जब सारे संकल्प समाप्त हुए तब चेतन स्वयं अकेला रह गया और अद्वैत हो गया। अद्वैत का अर्थ सब कुछ एक में मिलाकर एक हो जाना नहीं है, किन्तु स्व से भिन्न जो कुछ है उन सबको छोड़कर अकेला रह जाना अद्वैत है।

सद्गुरु कबीर हमें राय देते हैं कि सारी भूलों की औषध पारख है। पारख का अर्थ है परीक्षा। पारखी संत निष्पक्ष होते हैं। वे इसलिए किसी बात को मानते या नहीं मानते नहीं कि वह अपने मत की है या पराये की। वे सत्यान्वेषी होते हैं। वे अध्यात्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक होते हैं। पारखी संत कहते हैं कि जीव ही ज्ञान-विज्ञान का मूल है। इसी को चैतन्य होने से चेतन कहते हैं, स्वरूप होने से आत्मा, सर्वोच्च होने से इसी को ब्रह्म कह सकते हैं, हृदय में रमने से राम, स्वरूपतः अकेला होने से तथा वासनाओं को छोड़ देने के बाद असंग हो जाने पर अद्वैत कह सकते हैं, सभी कल्पनाओं का स्वामी होने तथा शुद्ध होने से परमात्मा कह सकते हैं। अर्थात चेतनपरक सारे विशेषण जीव के ही हैं। मूल में जीव ही है। जीव का ही गुण पारख अर्थात ज्ञान है।

सद्गुरु कहते हैं कि पारखी वह है जो सारे संसार को परखकर छोड़ दे और अपने पारखस्वरूप में, चेतनस्वरूप में स्थित हो जाये। जो परखने में आये वह दृश्य विजाति तथा जो परखता है वह पारखी ज्ञान मात्र है। इसीलिए सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा कि तू जिस ज्ञान तत्त्व से सबको परखता है वही पारख है और वही तुम्हारा स्वरूप है। उसी में स्थित हो जा, झांईंरूपी भ्रमकूप में नहीं जाना।

जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु स्थीर तू, नहिं झाँईं भ्रम कूप॥

(बीजक त्रिज्या अंतस्तुति)

हरि सा हीरा छाड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥
अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥
रैदास कहै जाके हृदै, रहै रैन दिन राम।
सो भगता भगवन्त सम, क्रोध न ब्यापै काम॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अह निसि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद॥

प्रतिशोध हटाएं, प्रेम जगाएं

लेखक—श्री ललितप्रभ जी महाराज

ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों में मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान माना जाता है। यद्यपि मनुष्य मछली की तरह हर समय पानी में नहीं रह सकता, न ही बाघ की तरह उसके नाखून नुकीले होते हैं, न ही तितली की तरह हवा में उड़ान भर सकता है और न ही बन्दर की तरह छलांगें लगा सकता है, फिर भी दुनिया भर के सभी प्राणियों से मनुष्य कुछ हटकर है। कुछ जीव शारीरिक बल में मनुष्य से श्रेष्ठ हो सकते हैं पर बुद्धिमत्ता में कोई भी प्राणी मनुष्य की बराबरी नहीं कर सकता है, लेकिन यह बुद्धिमान आदमी कभी-कभी बुद्धू भी बन जाता है और हम जानते हैं कि कभी-कभी बुद्धू भी वे ही बनते हैं जो जरूरत से ज्यादा बुद्धिमान होते हैं।

मनुष्य की आदत है कि वह दूसरों को देखता है, उनकी चर्चा करता है। उसकी सोच रहती है कि वह औरों के बारे में जाने, उनके जीवन में हस्तक्षेप करे, उनको चरित्रवान देखे। वह दूसरों को जितना जानना चाहता है उतना ही उनकी बातें भी सुनना चाहता है। पर दिक्कत यह है कि दूसरों के बारे में जिज्ञासा और दिलचस्पी लेने वाला व्यक्ति स्वयं के प्रति उदासीन रहता है। वह अपने भीतर की आवाज सुनने के लिए तैयार क्यों नहीं है? दूसरों की थोड़ी-सी बुराई हमारी आंखों में खटका करती है लेकिन अपनी बुराइयां, अपनी गलतियां सदा नजरअंदाज हो जाती हैं। जिसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए उसे व्यक्ति गहराई से देखता है और जिसे गहराई से देखना चाहिए उसकी उपेक्षा कर दी जाती है।

बनें वीतद्वेष

मनुष्य के जीवन में मैं दो प्रकार के रिश्ते देखता हूं—दोस्ती का और दुश्मनी का। दोस्ती के रिश्ते को तो हम सभी जानते हैं कि हम अपने मित्रों, परिचितों, आत्मीयजनों को याद किया करते हैं लेकिन वास्तविकता तो यह है कि जितना सम्बन्ध दोस्तों से होता है उससे कहीं अधिक सम्बन्ध दुश्मनों से होता है। वह दोस्त को भले ही दिन में दो बार याद करे लेकिन अपने दुश्मन को सौ बार याद कर लेता है। इस तरह व्यक्ति के जीवन में दो भाव—दोस्ती और दुश्मनी के पलते हैं। एक राग, दूसरा द्वेष। यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति स्वयं को राग के दायरे से अलग कर ले, मन में व्याप्त जो मोह-माया की भावना, रागात्मक सम्बन्ध है, उनको छिटका दे। हर व्यक्ति वीतराग हो सके, यह सम्भव नहीं है। अपने परिवार, माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री के प्रति जो रागात्मकता है उसे मन से विलग नहीं किया जा सकता। आज जो बात मैं आपसे कहना चाहता हूं वह जीवन से राग को मिटाने या हटाने की नहीं है। आप शायद राग को न छोड़ पायें, लेकिन वैर, द्वेष, दुश्मनी से तो बच ही सकते हैं।

कोई अपने जीवन में वीतराग बन सके या न बन सके, लेकिन हर व्यक्ति को वीतद्वेष अवश्य बन जाना चाहिए। आप अपने मोह को भले ही कम न कर सकें पर दूसरों के प्रति अपने विरोध को तो कम कर ही सकते हैं। आपका जिनके साथ राग और प्रेम है, उनसे आप दूर नहीं हट सकते तो जिनके साथ आपकी दुश्मनी है उनसे तो बचने की कोशिश कर ही सकते हैं। व्यक्ति अपने पुराने आघातों को याद करता है—'ओह! तो उसने मेरे साथ ऐसा किया था, उसने भरी सभा में मेरा पानी उतारा था, उसने मीटिंग में मेरी बात काटी थी, लोगों के बीच मेरे साथ दुर्व्यवहार किया था'—ऐसी बातों के प्रति उसके मन में उथल-पुथल चलती रहती है, और एक स्थिति वह आती है जब वह मानसिक रूप से तनावग्रस्त हो जाता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि जिसने मेरा अहित किया है उसके साथ मैं कैसा व्यवहार करूं।

सबको सन्मति दे भगवान!

अगर आपको लगता है कि अमुक व्यक्ति आपका दुश्मन है, उसके प्रति आपके मन में वैर-विरोध की

भावना है, कटुता है, तो उसके लिए आप छः महीने का एक प्रयोग करें। उससे माफी मांगने या उसके घर जाने की जरूरत नहीं है, न ही उसके बारे में किसी से चर्चा करें। रोज सुबह जब आप प्रार्थना करें, पूजा-पाठ करें या ध्यान-साधना में बैठें तब केवल एक मिनट अन्तर्मन में यह कामना करें कि, "हे ईश्वर! तू उसका कल्याण कर, उसका मार्ग प्रशस्त कर, उसको सद्बुद्धि दे और जीवन की अच्छी राहें दिखा।" अगर आप छः महीने तक लगातार अपने किसी दुश्मन के लिए ऐसी प्रेमभरी प्रार्थना कर रहे हैं तो निश्चय ही छः माह बाद वह दुश्मन आपकी दहलीज पर होगा, यह तय है।

हमारे विचार और हमारी मानसिकता ब्रह्माण्ड में फैलती है। आप यह न सोचें कि मेरी आवाज आप तक या आपके शहर तक ही सीमित है, मेरी आवाज ब्रह्माण्ड के अन्तिम छोर तक जाती है। जैसे आवाज जा रही है वैसे ही मेरे विचार भी जा रहे हैं। आप प्रयोग करें, उसका परिणाम सकारात्मक ही होगा। जब तमाम मंत्र, बातें और शास्त्र निष्फल हो जाते हैं तब मनुष्य के लिए एक दवा होती है—'सकारात्मक सोच।' जब तक व्यक्ति सकारात्मक सोच के साथ चल रहा है, उसकी हर असफलता एक दिन अवश्य ही सफलता में तब्दील हो जायेगी।

सकारात्मकता की सौरभ

क्या है यह सकारात्मकता? सकारात्मकता का मतलब यह नहीं कि किसी ने आपके साथ अच्छा किया तो आपने भी अच्छा कर दिया, आपको फूल दिये तो आपने भी फूल दे दिये, किसी ने आपकी बुराई की तो आपने भी बुराई कर दी, किसी ने आपको कांटे चुभाए तो आपने भी कांटे चुभा दिये। प्रेम के बदले प्रेम और कटुता के बदले कटुता देना सकारात्मकता नहीं है। सकारात्मकता वह है जिसमें आपको जिसने कटुता दी है उसे भी प्रेम दें, गाली देनेवाले को भी गीत दें, जिसने आपकी बुराई की है उसकी भी तारीफ करें। विपरीत स्थिति आने के बावजूद जब व्यक्ति अपनी सोच को पॉजिटिव बनाये रखता है, वही है सकारात्मक सोच। प्रतिशोध, वैर-विरोध और कटुता नकारात्मक सोच के कारण होती है। ईंट का जवाब पत्थर से देनेवाले लोग प्रतिशोध की भावना में जीते हैं और ईंट का जवाब फूल से देने वाले लोग मैत्री की भावना में जीते हैं; वे प्रेम, अनुराग और आत्मीयता में जीते हैं।

अगर आप महसूस करें कि अमुक व्यक्ति आपके लिए गलत सोच रहा है, गलत टिप्पणी कर रहा है तो जैसे ही वह मिले, आप उसे प्रेम से प्रणाम करें, चार लोगों के बीच उसकी तारीफ करें, आपके घर आ जाये तो प्रेम से मधुर मुस्कानपूर्वक उसका स्वागत करें। हमें पता चले कि हमारे यहां जो व्यक्ति आया है वह हमारी निन्दा करता है, अपशब्द बोलता है, मन में कटुता रखता है तो हम उसका दुगने प्रेम से स्वागत करते हैं, ताकि हमारा व्यवहार उसकी सोच को सुधारने में सहायक बने। अगर तुम अपने दुश्मन को दोस्त में न बदल सको तो भी मैं कहूंगा कि तुम अपने व्यवहार को सुधारो।

खोल दीजिए गांठें

जो पुरानी बातें, पुराने आघातों को याद कर प्रतिशोध की भावना रखता है, वह आत्मघाती है। वह दूसरों का नुकसान कर पाये या नहीं किन्तु अपना नुकसान जरूर करता है। बदला, वैर और प्रतिशोध की भावना व्यक्ति को तालाब की सूखी मिट्टी की तरह बना देती है। जब तालाब का पानी समाप्त हो जाता है तो मिट्टी सूख जाती है और उसमें दरारें पड़ जाती हैं वैसे ही मनुष्य का मन भी खण्ड-खण्ड हो जाता है। बीस वर्ष पुरानी अनर्गल बातें आपके मन में डेरा जमाए रहती हैं। यह आपका मानसिक दिवालियापन और आत्मघात ही है। बीस साल पुरानी गांठों को भी आप खींच रहे हैं, उन्हें ढो रहे हैं। खीचने से गांठें मजबूत होती जाती हैं और खुलने का नाम भी नहीं लेतीं।

हम लोग एक शहर में थे। वहां एक व्यक्ति ने पन्द्रह दिन के उपवास किये। उपवास के उपलक्ष्य में उसने सम्पूर्ण समाज के लिए भोज का आयोजन किया। नगर में उस समाज के जितने भी लोग थे उन सबको

उसने आमन्त्रित किया। सुबह-सुबह समाज के चार-पांच वरिष्ठ लोग हमारे पास आये और कहने लगे—'महाराजश्री, आज समाज के आठ-दस हजार लोग उस व्यक्ति द्वारा आयोजित भोज में आएंगे लेकिन उसका एकमात्र सगा भाई और उसका परिवार नहीं आएगा।' मैंने पूछा—'क्यों?' वे कहने लगे—'दोनों भाइयों में किसी बात को लेकर तनातनी हो गयी थी जिसके कारण उनमें वैर-विरोध की भावना बढ़ती ही चली गयी।'

स्मरण रखें—'अगर कटुता को समय रहते मिटा लिया जाता है तो वह मिट जाती है लेकिन उसे भविष्य के लिए छोड़ दिया जाये तो समय बीतने के साथ-साथ वैर-विरोध, कटुता और वैमनस्य बढ़ते ही जाते हैं। समाज के लोगों ने मुझसे निवेदन किया—'आप चलें उस व्यक्ति के घर और उसे समझाएं।' मैं सहमत हो गया कि अच्छा चलता हूं। उन लोगों के साथ मैं उन महानुभाव के घर पहुंचा। वह दरवाजे पर स्वागत के लिए आया और मुझे भीतर ले गया। मैं उसके कहने के पूर्व ही आंगन में बैठ गया। मेरे बैठते ही वह भी सामने बैठ गया। मैंने कहा—'आज तो तुम्हारे लिए बहुत खुशी और सौभाग्य की बात है कि आज तुम्हारे घर में पूरे समाज का भोज है।' उसने कहा, 'नहीं महाराज, मेरे घर में नहीं है। वह मेरा भाई लगता था किन्तु अब नहीं है। उसके घर में भोजन है।' मैंने कहा—'अच्छा, तुम तो आओगे न?' उसने कहा—'किसी हालत में नहीं, मर जाऊंगा तब भी नहीं। अरे, हमारे बेटे-बेटियों की शादियां हो गयीं। किन्तु मैं उसके घर नहीं गया और न वह मेरे घर आया।' मैंने पूछा—'बात क्या है?' वह कहने लगा—'अब आपसे क्या छिपाना। बीस-बाईस साल पहले उसने समाज में मेरा अपमान कर दिया था, अपशब्द कह दिये थे। फिर बात बढ़ती चली गयी और हमने एक-दूसरे के घर आना-जाना और खाना-पीना सब बन्द कर दिया।'

पन्ना पलटा, हम भी पलट लें

'सगे भाई!' मैंने चुटकी लेकर कहा—'क्या बीस-बाईस साल पुराना कैलेण्डर है आपके घर में? जरा लाइये तो।' वह सकपकाया और कहने लगा—'महाराज, आप भी क्या बात करते हैं? बीस साल पुराना कैलेण्डर घर में थोड़े ही होता है।' मैंने कहा—'जब तुम दो साल पुराने कैलेण्डर को भी घर में नहीं रख सकते तो बीस साल पुरानी बात को अपने घर में या मन में क्यों रखे हुए हो? उसे निकालो, क्योंकि यह सब तुम्हारे दिमाग का कचरा है।' शायद नगरपालिका की कचरापेटी की सफाई रोज होती होगी लेकिन मनुष्य का दिमाग उस कचरापेटी से भी बदतर है क्योंकि उसने दिमाग में काम की बातें तो दो प्रतिशत किन्तु ऊल-जलूल इधर-उधर की बातों का संग्रह अट्ठानबे प्रतिशत कर रखा है। वैर-विरोध, वैमनस्य, प्रतिशोध की भावना वही व्यक्ति पालता है जिसने जीवन में क्षमा और प्रेम का आनन्द नहीं लिया है। जिसने अमृत का आनन्द नहीं लिया है वही समुद्र के खारे पानी को पीना चाहता है। तुम खारे पानी को पीने के आदी हो चुके हो और मीठे जल के स्वाद से वंचित हो। जलती हुई शाखा पर कोई भी पंछी अपना घोंसला नहीं बनाना चाहता है। गुस्सैल अथवा क्रोधी आदमी के पास उसका सगा भाई भी बैठना पसंद नहीं करता है।

प्रतिशोध तो वह विष है जो मस्तिष्क की ग्रन्थियों को कमजोर करता है और मन की शान्ति को भस्म कर देता है। अगर मनुष्य यह सोचता है कि वह वैर को वैर से, युद्ध को युद्ध से, हिंसा को हिंसा से काट देगा तो यह उसकी भूल है। वैर-विरोध और वैमनस्यता की स्याही से सना हुआ वस्त्र खून से नहीं बल्कि प्रेम, आत्मीयता, क्षमा तथा मैत्री के साबुन से साफ किया जाता है। पुराने आघातों को याद करना मानसिक दिवालियापन है, बदला लेने की भावना क्रूरता है और प्रतिशोध की सोच आत्मघात है।

यही है सनातन संदेश

न हि वेरेन वेरानि समन्तीध कुदाचनं। अवेरेन हि सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो ॥' वैर से वैर को मिटाया नहीं जाता और प्रतिशोध की आग कभी प्रतिशोध से बुझाई नहीं जाती है। उसका केवल एक ही साधन है,

प्रेम का साबुन और क्षमा का जल। आप जानते हैं कि महावीर के कान में कीलें क्यों ठोंकी गयी थी? ऋषभदेव ने कौन-सा पाप किया था कि बारह महीने तक उन्हें भूखा रहना पड़ा? रावण ने सीता का अपहरण क्यों किया था जबकि उसके मन में सीता के प्रति कोई पाप न था? इसका कारण कुछ और था।

महावीर के कानों में कीलें ठोकी गयीं क्योंकि गुस्से में आकर उन्होंने पूर्व जन्म में किसी के कानों में पिघलता हुआ शीशा डलवाया था। तुम मरते हो तो कीमती चूड़ियां, हीरों के हार, सुन्दर बदन, सुन्दर मकान, सुन्दर कपड़े और सुन्दर दुकान यहीं रह जाती है लेकिन मरने के बाद जन्म-जन्मान्तर तक वैर-विरोध की गांठ चलती रहती है। इस गांठ को कमठ भी लेकर गया और मेघमाली के रूप में उसने पार्श्व पर उसका प्रयोग किया। रावण ने सीता का अपहरण किया क्योंकि उसकी बहिन शूर्पणखा ने उसके मन में राम के प्रति प्रतिशोध की भावना पैदा की थी। उसने ललकारते हुए कहा था—'एक मनुष्य ने तुम्हारी बहिन की नाक काटी है, उसका अपमान किया है, क्या तुम उसके अपमान का बदला नहीं लोगे?' और इस तरह बहिन के प्रतिशोध का बदला लेने के लिए रावण ने राम की पत्नी सीता का अपहरण किया है। यह बात अलग है कि बात का प्रारम्भ छोटी-सी बात से होता है किन्तु आगे चलकर वही बात अहंकार का रूप धारण कर लेती है और फिर अहंकार 'काम' का रूप लेता है। शुरुआत में तो किसी वैर, प्रतिशोध की भावना ही होती है।

जन्म न ले ले वैर की गंदी मछली

वैर तो मनुष्य के मन रूपी सरोवर में रहने वाली एक ऐसी गंदी मछली है जो सारे सरोवर को गंदा कर देती है। अगर हमारे मन में वैर, कपट, कलह और कटुता है, प्रतिशोध की भावना है तो मैं कहूंगा कि हमने अपने मन के सरोवर में गंदी मछली को जन्म दे दिया है। जब तक यह गंदी मछली रहेगी तुम अपने जीवन में दुर्गन्ध से भरे रहोगे। वैर से वैर मिटता नहीं है। तुम अपने विरोधी को भी प्रेम दो, उसके प्रति भी दोस्ती के भाव रखो, तुम्हारी निन्दा करने वाले व्यक्ति की भी प्रशंसा करो तो तुम पाओगे कि एक दिन वह निंदक तुम्हारे पांवों में गिर जायेगा।

भगवान ने बहुत अच्छी बात कही है कि जो संत विग्रह और कलह में विश्वास रखते हैं, वे जिस समाज में जाते हैं वहां उसके टुकड़े कराने की ही कोशिश करते हैं। जो वाकई में सन्त होता है वह टूटे हुए दिलों को आपस में जोड़ता है और जो जुड़े हुए दिलों को तोड़ता है, उसे हम 'असंत' कहते हैं।

भगवान ने कहा कि जो लोग विग्रह और कलह में विश्वास रखते हैं, वे पापश्रमण होते हैं। व्यक्ति को उनसे बचना चाहिए। जो सन्त समाज में आपसी दूरियां बढ़ाने की कोशिश करते हैं, वैर-विरोध की भावना पनपाते हैं, अपने अहंकार को सन्तुष्ट करने के लिए मानसिक दूरियां बढ़ाते हैं, वे सन्त नहीं होते। मैंने देखा है, चार-पांच वर्ष पहले जैन सम्प्रदाय में दो सन्त अलग हुए थे। वे अमुक-अमुक सन्त की परम्परा में चले गये। मैंने देखा, पिछले तीन वर्षों में उनके विरोध की भावना को। उफ्! शायद झोपड़पट्टी में रहनेवाले लोग जिन्हें हम नासमझ कहते हैं और जिन्हें हम धर्म और बुद्धि के विवेक से हीन समझते हैं, वे भी आपस में एक दूसरे का ऐसा विरोध नहीं करते होंगे जैसा उन सन्तों ने एक-दूसरे का विरोध किया था। मेरे पास, कभी अमुक परम्परा के लोग आते और अपने सन्त की तारीफ करते, कभी दूसरी परम्परा के लोग आते और अपने संत की प्रशंसा करते। मैं उनसे कहता, 'अभी तुम्हारे सन्त, सन्त कहां हुए हैं! जो लोग अपने समाज में, अपने पन्थ में वैर-विरोध और कटुता की भावना का पोषण करते हैं, क्या वे लोग सन्त कहलाने के भी योग्य हैं? सन्तों के मन में भी अगर सन्तों के प्रति वैर और विरोध है तो फिर मैं यह पूछना चाहूंगा कि प्रेम का बसेरा कहां होगा?'

प्रेम-सरोवर सूख न पाये

मैंने एक राजस्थानी कहावत पढ़ी है—'कुत्ता लड़ै दांतां सूं, मूरख लड़ै लातां सूं और संत लड़े बातां सूं।' सभी लड़ने में मशगूल हैं। धोबी धोबी से मिलता है तो

राम-राम करता है, नाई नाई से मिलता है तो राम-राम करता है, जो भी एक दूसरे से मिलते हैं तो नमस्कार प्रणाम करते हैं, मगर दुर्भाग्य यह है कि अगर सन्त सन्त से मिलता है तो वह हाथ भी जोड़ने को तैयार नहीं होता। सोचें, वस्त्र बदलकर साधु तो हो गये हैं पर क्या मन से भी साधु हो पाये हैं?

जिसके मन में कठोरता, कटुता, कलह और संघर्ष की भावना रहती है उसके चित्त में कभी किसी के प्रति प्रेम नहीं होता। उसके प्रेम के सरोवर का पानी सूख जाता है और उसमें दरारें पड़ जाती हैं। स्नेह की कमी से मेलजोल में कटौती होती है। वह स्वयं तो दुःखी रहता ही है किन्तु अपनी उपस्थिति से आसपास के लोगों को भी दुःखी करता है। अपने क्रोध और अहंकार से स्वयं को तो दण्डित करता ही है, दूसरों को भी दण्डित करने की सोचता रहता है। इतिहास में खून की जो नदियां बहती रही हैं, उनका एकमात्र कारण प्रतिशोध और बदले की भावना रही है। चिरकाल तक मनुष्य के मन में प्रतिशोध की भावना लहराती है। आइए, हम जीवन का बोध जगाएं, प्रतिशोध को हटाएं और प्रेम की गंगा-यमुना को अपने हृदय में बहाएं।

वैर बिन, ये चार दिन

एक बार हम मन को टटोलें, किसी धार्मिक ग्रन्थ की तरह ईमानदारी से अपने मन को पढ़ें। अपनी विचारस्थिति को पढ़ें कि कहीं उसके भीतर कोई वैर तो नहीं है। चार दिन की छोटी-सी जिन्दगी में दो दिन तो बीत गये और शेष दो दिन भी बीत जाएंगे—फिर किस बात का वैर-विरोध!

चार दिन की जिन्दगी में, इतना न मचल के चल।
दुनिया है चल-चलाव का रास्ता, जरा संभल के चल॥

छोटी-सी जिन्दगी में कैसा वैर-विरोध! मेरे प्रभु, छोटी-छोटी बातों की गांठें न बांधें। जैसे गन्ने की गांठ में एक बूंद भी रस नहीं होता वैसे ही जिस आदमी के मन में गांठें बन जाती हैं, उसका जीवन भी नीरस हो जाता है।

इतिहास की एक घटना है—काशी में ब्रह्मदत्त नाम के एक नरेश हुए। उनके पड़ोसी राज्य 'कोशल' के राजा थे दीर्घेती। एक दफा कोशलनरेश और काशीनरेश के मध्य युद्ध हुआ। कोशलनरेश अपनी रानी को लेकर पलायन कर गये, क्योंकि उन्हें पता लग चुका था कि उनकी पराजय तय है। जंगल में वे दोनों कुटिया बनाकर रहने लगे। उस समय रानी गर्भवती थी। कुटिया में ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। दीर्घेती ने उस बच्चे का नाम दीर्घायु रखा। दीर्घेती के मन में संशय था कि ब्रह्मदत्त कभी भी यहां पर हमला कर सकता है। यह सोचकर उसने दीर्घायु को विद्याध्ययन के लिए दूर भेज दिया। उधर ब्रह्मदत्त के सैनिकों ने दीर्घेती और उसकी पत्नी की हत्या कर दी। दीर्घायु ने जब यह समाचार सुना तो उसने संकल्प किया कि वह अपने माता-पिता की हत्या का बदला जरूर लेगा।

प्रतिशोध की आग से भरे हुए दीर्घायु ने काशीनरेश के यहां घुड़साल में नौकरी पा ली। वहां नौकरी करते हुए वह अपनी निपुणता से राजा का चहेता बन गया है। राजा ने उसे घुड़साल की नौकरी से हटाकर अपने निजी सहायक के रूप में नियुक्त कर लिया। मन में प्रतिशोध की भावना होने के बावजूद वह उसी के यहां काम कर रहा था। दिन, महीने, साल बीत गये। एक दिन राजा ब्रह्मदत्त दीर्घायु को साथ लेकर शिकार खेलने गया। वह नहीं जानता था कि यह शत्रु का पुत्र है लेकिन दीर्घायु तो अपने पिता के हत्यारे को जानता था। दोनों घनघोर जंगल में पहुंच गये। राजा थक चुका था, अतः एक पेड़ की छांव में दीर्घायु की गोद में सिर रखकर विश्राम करने लगा। थोड़ी देर में उसे नींद आ गयी।

बदले से बढ़कर क्षमा

दीर्घायु बार-बार राजा के चेहरे को देखता और सोचता—'आज मौका है। यही वह व्यक्ति है जिसने मेरे पिता से युद्ध करके उन्हें पराजित किया था। यही है वह जिसने मेरे माता-पिता की हत्या करवायी। आज मुझे मौका मिला है, मैं अपने माता-पिता की हत्या का बदला लूंगा।' ऐसा सोचते हुए उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाली। वह ब्रह्मदत्त पर वार करने ही

वाला था कि उसे पिता के वचन याद आये—'बेटा, प्रतिशोध की भावना से भी महान क्षमा होती है। महान वे नहीं हैं जो प्रतिशोध की भावना को बलवती बनाये रखते हैं। महान वे हैं जो अपने हृदय में क्षमा का सागर समेटे रखते हैं।' दीर्घायु ने पिता के वचनों पर विचार किया।

उधर सोया हुआ ब्रह्मदत्त स्वप्न देखता है कि उसका अंगरक्षक उसकी हत्या करने के लिए कटार हाथ में ले चुका है। वह घबराकर जाग जाता है और दीर्घायु के हाथ में तलवार देखता है वह पूछता है—'तुम कौन हो?' दीर्घायु कहता है—'तुम्हारे दुश्मन दीर्घेती का पुत्र हूं। मेरे मन में विकल्प आया था कि मैं अपने पिता के हत्यारे की हत्या करके बदला ले लूं, लेकिन मुझे अपने पिता का कहा गया वह वचन याद आ गया कि प्रतिशोध से बढ़कर तो क्षमा होती है। यही विचारकर मैंने तुम पर तलवार नहीं चलाई।'

अपने शत्रु के हाथ में तलवार देखकर ब्रह्मदत्त कांप गया और क्षमा मांगने लगा। उसने कहा—'मुझे क्षमा कर दो। मैं चाहता हूं कि हम अपने वैर-विरोध की भावना को यही समाप्त कर दें और परस्पर मैत्री के भाव स्थापित करें। तब ब्रह्मदत्त ने अपनी पुत्री का विवाह दीर्घायु के साथ कर दिया और दहेज में कोशल का राज्य वापस दे दिया।

याद रखने की बात है कि प्रतिशोध और वैर से महान क्षमा होती है और वैभव से ज्यादा महान त्याग होता है। यह जीवन का अटल सत्य है जो सनातन है। यह कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद, जीसस के समय जितना सत्य था आज भी उतना ही सत्य है हम सबके लिए। जीवन में से प्रतिशोध का नाला हटाएं और प्रेम की गंगा-यमुना बहाएं। एक बार व्यक्ति प्रेम में जीकर देखे तो उसे पता लगेगा कि प्रेम में जीने का क्या आनन्द और मजा है।

प्रेम प्रभावी तो कौन हावी!

औरों के वचनों से मन को प्रभावित न करें, औरों की टिप्पणी से मन को कुंठित न करें, अपने मन को विचलित न करें। बुद्ध किसी गांव से होकर जा रहे थे। गांव के लोगों ने उनकी बहुत निंदा की, अपशब्द कहे। गांव वाले जितना बुरा बोल सकते थे, बोले। जब वे चुप हो गये तो बुद्ध ने कहा—'क्या अब मैं अगले गांव चला जाऊं?' लोग दंग रह गये कि हमने इन्हें इतना भला-बुरा कहा और ये जरा भी प्रभावित नहीं हुए बल्कि मधुर मुस्कान से पूछ रहे हैं कि क्या मैं अगले गांव चला जांऊ? लोगों ने पूछा, 'हमारी गालियों का क्या हुआ?'

बुद्ध ने कहा—'मैं जब पिछले गांव में था तो लोग मेरे पास मिठाइयां लेकर आये थे। उन्होंने मुझे मिठाइयां देने की बहुत कोशिश की और तरह-तरह के प्रयास भी किये लेकिन मैंने किसी की मिठाई स्वीकार नहीं की। आप मुझे बताएं कि वे मिठाइयां फिर किसके पास रहीं?' लोगों ने कहा—'यह तो बच्चा भी बता देगा कि मिठाइयां उन्हीं के पास रहीं।' बुद्ध ने कहा—'तुम्हारी बात तुम्हें मुबारक! पीछे के गांव वालों ने मिठाइयां दी, मैंने वे नहीं लीं अतः वे उन्हीं के पास रहीं, वैसे ही आप लोगों ने मुझे गालियां दीं और मैंने नहीं लीं तो आप लोगों की चीज आप ही के पास रह गयी।'

जिनके मन में प्रेम और शान्ति का निर्झर बहा करता है वे ही लोग अप्रियता, कलह, कटुता और विरोध का वातावरण बनने पर भी उसे प्रेम और क्षमा में ढाल लिया करते हैं। महात्मा गांधी पानी के जहाज पर यात्रा कर रहे थे। इस यात्रा में एक अंग्रेज यात्री भी था जो गांधी जी से नाराज था। उसने अपशब्दों से भरा एक पत्र गांधी जी को लिखा और सोचा कि जब मैं उसे गांधी को दूंगा तो वे नाराज होंगे, झल्लाएंगे, क्रोध करेंगे। और भी क्या-क्या करेंगे, यह देखूंगा। गांधी जी के पास पत्र पहुंचा। सरसरी निगाह से उन्होंने पत्र देखा, पढ़ा, उसमें लगी आलपिन निकाली, उसे जेब में रखा और कागज पानी में फेंक दिया। गांधी जी के सहायक ने जब यह देखा तो उससे पूछे बिना न रहा गया कि उन्होंने पिन तो निकाल ली और पत्र क्यों फेंक दिया? गांधी जी ने कहा—'उसमें पिन ही एक काम की चीज थी जो मैंने रख ली। बाकी सब बेकार की बातें थी, सो मैंने फेंक

दी।' काम की बात हो तो उसे स्वीकार लें और बेकार की बातों को फेंक दें।

जहां मौज, वहां ओज

प्रसन्न रहो, हर हाल में खुश रहो। प्रसन्नता आपके सौन्दर्य को द्विगुणित करती है। आप प्रेम में, वात्सल्य में जीकर तो देखें। जितने आप जवानी में सुन्दर हैं उससे भी अधिक बुढ़ापे में सुन्दर दिखाई देंगे। क्या आपने गांधी जी का जवानी और बुढ़ापे का चित्र देखा है? तीस वर्ष की आयु में वे जैसे दिखते थे, सत्तर वर्ष की आयु में उससे कहीं अधिक सुन्दर दिखने लगे थे। जैसे-जैसे व्यक्ति के विचार सुन्दर होते जाते हैं उसका भीतरी सौन्दर्य चेहरे पर प्रकट होने लगता है। महावीर तो निर्वस्त्र रहते थे—हवा, धूप, पानी में। फिर भी उनका सौन्दर्य अप्रतिम था। आपने महर्षि अरविन्द का वृद्धावस्था का चित्र देखा है? उनके चेहरे का ओज, तेज और सौन्दर्य कितना अधिक आकर्षक था? बुढ़ापे में उसी का चेहरा बदसूरत होता है जिसके विचार सुन्दर नहीं होते। जिसकी विचारदशा सुन्दर होती है, वह जैसे-जैसे बूढ़ा होता है, उसके चेहरे पर सौन्दर्य छलछलाने लगता है।

किसी के कल्याण के लिए अपनी ओर से जो कुछ भी हो सके, कर दो। अगर नहीं कर सको तो सहज रहो, अपने मन को हमेशा निर्मल रखो। मैंने सुना है—अमेरिका में एक भिखारी था। जब वह मर गया तो पुलिस उसके शव को अन्त्येष्टि के लिए उठाने आयी। वह सड़क के किनारे ही रहता था, अतः उसका सामान भी वहीं पड़ा था। पुलिस ने वहां दो थैले देखे। उनमें फटे-पुराने कपड़े थे और थी बैंक की एक पासबुक और एक चेकबुक। पासबुक में देखा तो पाया कि उसके नाम से बैंक में साढ़े तीन लाख डॉलर जमा थे और चेक बुक को टटोला तो उसमें एक ब्लैंक चेक पर साइन किये गये थे। चेकबुक पर एक नोट लिखा हुआ था कि मैंने भीख मांग-मांगकर ये पैसे जमा किये हैं, इनका उपयोग मेरे मरने के बाद, मुझ जैसे ही मांगने वाले लोगों के कल्याण के लिए किया जाये। जब मैंने इस घटना के बारे में जाना तो मेरे दिल ने कहा—

किसी को भी हो न सका उसके कद का अन्दाज,
वो आसमां था, पर सर झुका के जीवन भर बैठा रहा।

आप इतने महान भले ही न बन सकें पर इतनी विराटता जरूर दिखा सकते हैं कि अपने मन की कटुता, कलह, संघर्ष की भावना को कम करें। अगर आपके पांव में कांटा चुभ जाये और आप चलते रहें तो वह आपको तकलीफ देता रहेगा लेकिन उस कांटे को निकाल दिया जाये तो आपको अवश्य ही राहत मिलेगी। इसी तरह आपके मन में जो कांटे चुभे हुए हैं, उन कांटों को बाहर निकाल दें तो आपको बहुत राहत मिलेगी। जिस दिन आपने उन कांटों को निकाल दिया तो मान लीजिए उन दिन संवत्सरी हो गयी, क्षमापना हो गयी, पर्युषण हो गये, आप वीतद्वेष हो गये। वीतराग होना हमारे हाथ में हो या न हो पर वीतद्वेष होना तो हमारे हाथ में ही है।

प्रतिशोध को कैसे मिटाएं?

प्रतिशोध मिटाने का पहला उपाय है : अपने भीतर सहनशीलता का विकास करें। याद है न, जीसस क्राइस्ट को सूली पर लटकाने में उनके ही दो शिष्यों की प्रमुख भूमिका रही। क्रॉस पर लटकाते समय उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी तो उन्होंने उन्हीं दो शिष्यों को अपने सामने बुलाने के लिए कहा। दोनों शिष्यों को जीसस के सामने लाया गया। वे दोनों थर-थर कांप रहे थे कि पता नहीं जीसस हमें क्या दुराशीष देंगे लेकिन जीसस ने एक पात्र में दूध और जल मंगवाया और उन दोनों शिष्यों को एक चौकी पर बिठाकर उस जल से उनके पांवों का प्रक्षालन किया ताकि उनके स्वयं के मन में भी उन दोनों के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना न रह जाये। उनके अन्दर इतनी सहनशीलता थी कि उन्होंने वह पात्र उठाया, दोनों गुरुद्रोही शिष्यों के पांव धोये और उन्हें अपने बालों से पोंछा। फिर कहा—'हे प्रभु, तू इन्हें माफ करना क्योंकि ये नहीं जानते हैं कि ये क्या कर रहे हैं?' जिसके भीतर इतनी सहनशीलता होती है वह प्रतिशोध

और वैर का जवाब प्रेम से देता है, कांटों का जवाब फूलों से देता है।

हम अपने जीवन में उस सहनशीलता का विकास करें कि अगर कोई हमारे प्रति अन्याय करे तो भी हम अपने अन्तर्मन में न्याय की भावना ही रखें। दुश्मन के प्रति भी दोस्ती का भाव रखना ही सहनशीलता का विकास है।

प्रतिशोध मिटाने का दूसरा तरीका है—क्षमा का विकास। जब भी विपरीत स्थितियां और वातावरण निर्मित हो तब उनके प्रति अपने अन्तर्मन में क्षमा और प्रेम को जन्म दें। महावीर के कान में कीलें ठोकी गयीं तो उन्होंने क्षमा को धारण किया। आपके कान में कड़वे शब्द पड़ें तो आप भी क्षमाशील बने। एक संत के जीवन में अगर कषाय जगता है तो वह उसे सांप बनाता है और अगर सांप के जीवन में क्षमा जगती है तो वह उसे देव बना देती है। यही क्षमा, अहिंसा और प्रेम जीवन जीने की कला है।

क्षमा-प्रेम का स्वाद अनुपम

वैर-विरोध और प्रतिशोध उसी को अच्छे लगते हैं जिसने अभी तक प्रेम और क्षमा का स्वाद नहीं चखा है। दुनिया में दो कठिन कार्य हैं—किसी से क्षमा मांगना या किसी को क्षमा करना। परन्तु ये दोनों ही कार्य आपको अनेक कठिनाइयों से मुक्ति दिलाते हैं। शुरू-शुरू में माफी मांगना हमें जहर पीने के समान लगता है परन्तु परिणाम में अमृत हो जाता है। क्षमा मांगना यदि प्रायश्चित का सुन्दर व अच्छा रूप है तो क्षमा करना बड़प्पन का प्रतीक। इसमें आप न केवल मन की उलझन से मुक्त होंगे अपितु अपनी शक्ति और शान्ति में बढ़ोत्तरी करने में भी सफल हो जाएंगे।

जब कोई व्यक्ति आपके प्रति गलती या अपराध कर देता है तो आपके मन में जलन या प्रतिशोध की भावना पैदा होती है। परिणामस्वरूप आप उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाते हैं। याद रखें क्रोध का तूफान आपके दिमाग के दीपक की लौ को बुझा देता है।

किसी से माफी मांगकर या किसी को माफकर आप उसके प्रति कोई उपकार नहीं करते। अपितु स्वयं पर ही उपकार करते हैं क्योंकि आप बदले की भावना और वैर-विरोध जैसे नकारात्मक भावों से मुक्त होकर शान्त और प्रसन्न होते हैं।

त्याग तभी जब त्यागा अहम

प्रतिशोध को हटाने का तीसरा उपाय है—अहंकार का समापन। अगर आपके भीतर 'मैं' का भाव है, तो कृपया उसे निकाल दें वैसे ही जैसे आप पांव में गड़े हुए कांटे को निकालते हैं। आप सभी बुद्धत्व की राह के राही हैं और इस मार्ग पर चलने की पहली सीढ़ी ही अहंकार का त्याग है। आपने सब कुछ त्याग दिया पर अहंकार को न त्याग सके तो आपके सभी त्याग व्यर्थ हैं।

आप सबका सम्मान करें। एक व्यक्ति पत्नी से झगड़ा करके गुस्से से भरा हुआ किसी सन्त की कुटिया के पास पहुंचा। उसने वहां धक्का मारकर धड़ाम से दरवाजा खोला, जूते खोले और जाकर गुरु को प्रणाम किया और बोला—'मुझे शान्ति का पाठ पढ़ाओ।' गुरु ने कहा—'शान्ति और अशान्ति की बात बाद में करेंगे। पहले तुम जाकर उस दरवाजे से माफी मांगो, अपने जूतों से माफी मांगकर आओ।' उसने कहा—'क्या मतलब? दरवाजे और जूतों से माफी मांगने का क्या तुक?' संत ने कहा—'तुमने अभद्रता से दरवाजा खोला है और बेरहमी से जूते खोले हैं इसलिए दोनों से माफी मांगो, फिर आगे कोई बात करेंगे।'

अगर व्यक्ति शान्ति चाहता है तो सबका सम्मान करे, हिंसा का बहिष्कार करे, दूसरों के कार्यों में सहयोग दे, बन्धुत्व के भाव का स्वयं में संचार करे और समय-असमय दूसरों के काम आये।

हम सभी प्रेम की दहलीज पर आये हैं, तो प्रेम से जिएं, प्रेम का आचमन करें। यदि प्रेम में जीकर देखेंगे तो पता चलेगा कि प्रेम ने हमें क्या-क्या दिया है।

('कैसे सुलझायें मन की उलझन' से साभार)

प्रवचन

सावधानी ही साधना है

(पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर आश्रम, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—श्री रामकेश्वर जी)

सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु कबीर की एक साखी है—

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बांचिहैं, जाके हृदय विवेक॥

साहेब कहते हैं कि मन समुद्र है और इच्छाएं तरंगें हैं और इसमें बहुत-से अविवेकी डूब गये हैं। इससे वही बचेगा जिसके हृदय में विवेक होगा। हमें अपने हृदय में विवेक जगाना है।

पतंजलि योगदर्शन के भाष्यकार व्यास जी ने कहा है कि पापबहा और पुण्यबहा दो मनोवृत्तियां हैं। हमारी मनोवृत्ति या कहिये चित्तवृत्ति यदि पाप की तरफ, विकारों की तरफ, हिंसा, राग-द्वेष, भोगवासना, कलह-कल्पना, चिंता-फिक्र, शोक-मोह इन सबकी तरफ बहती है तो पापबहा है और ज्ञान, आत्मा-अनात्मा का विवेक, शील, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, समता, श्रद्धा तथा ज्ञान-वैराग्य की तरफ बहती है तो कल्याणबहा है। इन दोनों पर नियंत्रण करनेवाला तथा मनोवृत्ति को पापबहा की तरफ से घुमाकर कल्याणबहा की तरफ बहानेवाला मनुष्य स्वयं है।

हमारे ऊपर जिम्मेदारी है कि हम अपने मन को ठीक करें क्योंकि सुख और दुख की अनुभूति का साधन मन है। जीवन में दुख है क्योंकि मन ठीक नहीं है और जीवन में सुख है क्योंकि मन ठीक है। सुख और दुख की इतनी ही परिभाषा है। हम सुख और दुख को भौतिक वस्तुओं से बहुत ज्यादा जोड़ देते हैं जबकि भौतिक वस्तुओं से उसका सम्बन्ध थोड़ा ही है। भौतिक वस्तुओं से सम्बन्ध केवल निर्वाह से है। भौतिक वस्तुओं के बिना निर्वाह न होगा लेकिन सुख और दुख का भौतिक वस्तुओं से कोई खास मतलब नहीं है। सुख और दुख हमारे मन पर निर्भर करते हैं। पवित्र मनवाला सदैव आनन्दित होता है और मलिन मनवाला सदैव भयभीत और अतृप्त रहता है। जीवन का चरम फल, परम फल, जीवन की सर्वोच्च स्थिति तृप्ति और निर्भयता है। मन में पूर्ण संतोष, पूर्ण तृप्ति हो और दूसरी बात पूर्ण निर्भयता हो। निर्भयता हुए बिना पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। पूर्ण तृप्ति है तो निर्भयता है ही। पूर्ण निर्भयता और पूर्ण तृप्ति ये जीवन के परम फल हैं और यह मन को ठीक किये बिना असम्भव है। हम वह काम नहीं करते हैं जिससे मन ठीक हो किंतु वह काम करते हैं जिससे मन और बेठीक हो।

देखा जाता है कि चार लोग कहीं बैठे होते हैं तो ऐसी ही बात करते हैं कि सुलझा हुआ मन और उलझ जाये, अविवेक में त्रस्त हो जाये, उद्वेगित हो जाये। हम ऐसी चीज देखते, सुनते, खाते और सोचते-विचारते हैं जिससे मन अधिक से अधिक उत्तेजित और विकारी हो। हमारा खाना-पीना, देखना-सुनना, समझना-विचारना, सब संतुलित होना चाहिए लेकिन हमारा मन ऐसा कहां होता है! वह तो ऐसा होता है जैसा कटहवा बांस होता है। कटहवा बांस को नीचे से काटकर निकालना बड़ा कठिन होता है क्योंकि उसकी हर गांठ से कंटीली कइनी निकल-निकल कर दूसरे बांसों से निकली हुई कइनियों से उलझी रहती हैं इसलिए बांस को काटकर नीचे से निकालना चाहो तो वे कइनियां नहीं निकलने देती हैं। बांस को निकालने के लिए यह जरूरी है कि पहले उससे निकली हुईं कइनियों को काट दिया जाये तब नीचे से बांस को काटकर खींचा जाये। ऐसे ही यह मन भी सहज ही संतुलित नहीं हो जायेगा। इस पर सांगोपांग विचार करना पड़ेगा। मन तब संतुलित होगा जब खाना-पीना, बात-व्यवहार सब ठीक हो। अण्डा-मुर्गी, मांस, शराब-कबाब, गांजा-भांग, बीड़ी-सिगरेट और

तम्बाकू-पान इन सबका सेवन न करें। चाय पीनेवाले भी चाय के आदी न बनें क्योंकि ज्यादा चाय भी नुकसान करती है। भोजन सात्त्विक, सुपाच्य और सादा हो। उसमें नमक कम हो और मिर्च-मसाले न हों। केवल हल्दी, धनियां, जीरा ही पर्याप्त मसाला है। उष्ण चीजें शरीर और मन दोनों के लिए हितकर नहीं हैं। भोजन सादा और स्वल्प होना चाहिए। सदैव कम खायें।

राग-द्वेष की बात कभी न करें। आप यह कहावत सुने ही होंगे कि "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"—जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में भी है। अगर शरीर और मन से व्यतिक्रम करेंगे, गलत करेंगे तो जीवन में द्वन्द्व आ जायेगा। समाज में करेंगे तो समाज में आ जायेगा, देश में करेंगे तो देश में आ जायेगा। जितना बड़ा कर्म होगा, उतना बड़ा प्रतिकर्म होगा क्योंकि क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इसलिए स्वयं संतुलित रहें और जितना व्यवहार हो वह दूसरे के लिए संतुलन करनेवाला हो।

यह सृष्टि, यह प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती। यह जो सत्ता है। इसमें क्षमा नाम की कोई चीज नहीं होती। क्रिया की प्रतिक्रिया जीवन में होनी है। भगवान भी अगर लहसुन-प्याज खा ले तो उसको भी लहसुन-प्याज की दुर्गंधी की डकार जरूर आयेगी। उसको भी क्षमा नहीं होगी। इसलिए ऐसा कोई भी काम न करें, जो जीवन को विकारी बनाये। ऐसी कोई भी चर्चा न करें जहां मनुष्यों में विद्वेष फैले। 'मनुर्भव जनयादिव्यम् जनम' हमारे ऋषि ऐसा कहे हैं। उनके कहने का अर्थ है कि मनुष्य बनो और दिव्य मनुष्यों को-दिव्य समाज को, संतुलित समाज को जन्म दो। संतुलित समाज को वही जन्म देगा जो स्वयं संतुलित होगा। असंतुलित आदमी से संतुलन कभी सम्भव नहीं है। जहां दूसरे के लिए उत्तेजना है, दूसरे के लिए बुराई है, दूसरे के घरवालों के लिए, दूसरी जातिवालों के लिए, दूसरे मजहब वालों के लिए, दूसरे देशवालों के लिए, दूसरे वर्गवालों के लिए ईर्ष्या-द्वेष और बुराई की चर्चा है, निश्चित है कि वहां पहले विनाश होगा फिर दूसरे के विनाश में वह सहायक होगा।

कोई गुरु अगर साधुओं को लेकर बैठे और उनसे यही कहा करे कि अमुक लोग खराब हैं, अमुक समाज वाले खराब हैं तो "खराब-खराब" कहते-कहते संस्कार ऐसा खराब होगा कि उसका समाज भी खराब हो जायेगा। पीछे फिर दूसरे का जो होगा वह तो होगा ही।

जो अपने घर में अपने बाल-बच्चों के सामने, अपनी पत्नी के सामने, अपने पति के सामने, अपने भाई तथा माता-पिता के सामने दूसरे घरवालों की, दूसरी जातिवालों की, दूसरे मजहबवालों की, दूसरे देशवालों की बुराई करते हैं वे अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। वे अपने लोगों को मानो बुराई सिखाते हैं। वे अहंकार भरते हैं कि हम और तुम अच्छे हैं, दूसरे बुरे हैं लेकिन सबसे बुरे तो वे हैं। अपने-अपने दामन को सब देखें तब दिखाई देगा कि कितनी-कितनी कालिमाएं अपने अन्दर में हैं। अपनी कालिमाएं देखी जाये तो दूसरों की कालिमाओं को देखने की जगह ही न रहेगी। दूसरों में दूसरे प्रकार की त्रुटियां हैं और हमारे में दूसरे प्रकार की हैं। इसलिए हमें अपनी त्रुटियों को देखने की जरूरत है।

जो परदोष दर्शन नहीं करता बल्कि अपना दोष देखता है, जो कोई ऐसी चर्चा नहीं करता है जिससे समाज-समुद्र में विषैली तरंग उठे, वह दूसरे की बुराई की चर्चा नहीं करता है। इसलिए जो कल्याण चाहे वह इस संसार में अमृत घोले, जहर न घोले। कोई यदि जहर घोलेगा तो उसी में वह भी मरेगा क्योंकि इस संसार से वह बाहर नहीं है इसलिए वह भी बच नहीं सकता।

जिन लोगों ने अन्य लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया है उनका भी जीवन दुर्व्यवहार में ग्रस्त होकर गया है। हम दूसरे को थप्पड़ मारते हैं तब हमारा भी हाथ झनझना जाता है और हमारे भी हाथ में चोट लगती है। जब हम दूसरे को गाली देते हैं तो हमारा मन और हमारी वाणी भी गंदी हो जाती है और जिसके मन-वाणी गंदे हो गये उसका जीवन पवित्र कहां होगा। इसलिए चाहे पिण्ड में हो चाहे ब्रह्माण्ड में, चाहे पारिवारिक स्तर

पर हो चाहे सामाजिक स्तर पर, चाहे राष्ट्रीय स्तर पर हो चाहे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, बुराई जितने अंशों में होगी उतने अंशों में विकार पैदा करेगी। इसलिए संसार में विष के बीज न बोयें, अमृत के बीज बोयें। दो दिलों को, दो वर्गों को, दो जातियों को, दो मजहबों को जोड़ने की बात करें। उनको तोड़ने की बात न करें क्योंकि तोड़नेवाला स्वयं टूट जाता है।

मैं महाराज श्रीकृष्ण की कहानी आप लोगों से कहा करता हूं। उनके सामने यह स्थिति आयी थी कि जिससे उनको लड़ना पड़ा था। जेलखाने में वे पैदा हुए थे। आप लोग जानते ही हैं कि उनके माता-पिता को जेल में बन्द कर दिया गया था। नाना को जेल में बन्द कर दिया गया था। ऐसी अवस्था में कोई जनमेगा तो उसका संस्कार कैसे होगा, इसे आप स्वयं समझ सकते हैं।

महाराज श्रीकृष्ण कुछ ही बड़े होते हैं कि उनको सब पता लगता है कि कंस कितना दुराचारी था और वह समय आ जाता है जब वे कंस का निवारण करके अपने नाना को फिर से गद्दी पर बैठाते हैं। उनके समय में कई रजवाड़े बड़े खल थे। वे समाज का बड़ा अहित करते थे। उन सबका निग्रह करने के लिए महाराज श्रीकृष्ण समय-समय से तत्पर होते थे। उनके साथ उनके लड़के भी लड़ना सीख जाते हैं। हम लड़ायेंगे तो हमारे शिष्य लड़ना सीखेंगे ही। इसी प्रकार महाराज श्रीकृष्ण ने अपने लड़कों को लड़ना सिखाया तो वे लड़े और सीखते-सीखते श्रीकृष्ण महाराज के लड़के इतना लड़ना सीख लिये कि लड़ने का व्यसन उनको हो गया।

जब भारत की सारी लड़ाइयां खत्म हो गयीं और महाभारत का युद्ध भी खत्म हुए छत्तीस वर्ष बीत गये तब भी उनके बच्चों में लड़ाई की प्रवृत्ति बनी रही और उसी का परिणाम हुआ कि महाभारत के छत्तीस वर्ष के बाद पूरा यादव वंश महाराज श्रीकृष्ण के सामने कटकर मर गया क्योंकि बच्चों में लड़ने की आदत थी। श्रीकृष्ण महाराज ने संभालना चाहा लेकिन संभाल नहीं सके। इसलिए जो अपने अनुगामियों, अपने परिवार वालों, अपने साथियों को उत्तेजित करके फिर संभालने की दुश्चेष्टा करता है तो उसकी बुद्धि दुर्भाग्यपूर्ण ही होगी। वह बहुत ही अदूरदर्शी होगा।

हमारी प्रतिक्रिया जितने क्षेत्र में होगी उतने क्षेत्र में उसका प्रभाव होगा। हमने अपने छोटे से जीवन में देखा कि कुछ लोगों ने अपने परिवारवालों को उत्तेजित किया और अंत में अपने परिवार की उत्तेजना की गिरफ्त में होकर वे रोये। मैंने ऐसे भी साधु समाज देखा जिसके महंत ने अपने साधुओं को दूसरे की आलोचना करने में खूब लगाया और उसका परिणाम यह हुआ कि वह थोड़े ही दिनों में अपने ही साधुओं की आलोचना के शिकार हो गये। इसलिए कहीं भी हो, अगर अन्दर से कुछ विष निकलता है तो उस विष का प्रभाव पहले अपने ऊपर होगा फिर दूसरे के ऊपर। इसमें क्षमा नाम की कोई चीज हो ही नहीं सकती।

महाराज श्रीकृष्ण जब क्षमा नहीं किये गये और उनका परिवार जब क्षमा नहीं किया गया तब हम लोगों को भला कैसे क्षमा मिल सकेगी। ऐसे ही सभी परम्पराओं में है। जो इतिहास का अध्ययन किये हैं, वे जानते हैं कि यहूदी, ईसाई, इसलामी, आर्य, शैव और वैष्णव किसी भी परम्परा में अगर हिंसा आयी तो हिंसा बढ़ती ही गयी और वे खुद भी हिंसा की चपेट में आये क्योंकि हिंसा से हिंसा बढ़ती है यह अकाट्य नियम है।

हिंसा जब स्थान ले लेती है तब हिंसा की शृंखला चलती चली जाती है और समाज, देश तथा राष्ट्र उसकी गिरफ्त में हो जाते हैं। उनकी आर्थिक और आध्यात्मिक शक्ति नष्ट हो जाती है और इतना ही नहीं सभी प्रकार से उनका विनाश हो जाता है। हिंसा अपने माने हुए की हो या दूसरे की, हिंसा तो हिंसा है। हिंसा कहीं भी नहीं होनी चाहिए और सबके साथ व्यवहार मधुर होना चाहिए।

हमें चाहिए कि इस संसार-सागर में हम अमृत की लहर लायें, विष की लहर न लायें। जैसे यहां का साधु समाज है यहां पचास साधु हैं अब हम इनमें से दस को सुविधा दें और बाकी को हेय समझें तो कितना अनर्थ हो जायेगा। इस समाज में जो हमारी सेवा करनेवाले हैं,

हमारे बड़े प्रेमी हैं, हमारे बड़े अनुगामी हैं और हमारी बात बहुत माननेवाले हैं उनकी पीठ मैं खूब ठोकूं और दूसरों के विषय में कहूं कि अरे, उनका तो स्वभाव ऐसे हैं और तुम उनका अदब-लिहाज न करना तो धीरे-धीरे यह पूरा समाज ही सड़ जायेगा। इसी प्रकार कहीं भी हो तो वहां विकार आ जायेगा।

प्रकृति में क्षमा नाम की चीज नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो भगवान के यहां क्षमा नाम की चीज बिलकुल नहीं है। लेकिन आप लोगों ने भगवान को बड़ा सरल बना लिया है। उसको बड़ा भोला-भाला बना लिया है। समझ लेते हैं कि उसको एक पाव लड्डू चढ़ा देंगे तो वह खुश हो जायेगा फिर चाहे जैसा पाप करो, कोई हर्ज नहीं।

लोग सोचते हैं कि एक लोटा पानी चढ़ा दो और जो चाहो सो मिल जाये। लेकिन आप अपने मन को भले इस प्रकार बहला लो, भगवान सस्ता नहीं है और भगवान कोई व्यक्ति भी नहीं है। भगवान सत्ता है। उसमें वह दिल नहीं है जो धड़कता हो और लड्डू देखकर पसीज जाता हो। भगवान ऐसा नहीं है जिसको लड्डू देकर चाहे जो करो, वह क्षमा कर देगा। वह भगवान ऐसा नहीं है जिसे कोई घूस दे दे फिर चाहे जो काम करे, कोई हर्ज नहीं। हम मानते हैं कि जैसे हम मनुष्य हैं और जैसे हम कमजोरियों से घिरे हैं वैसे ही भगवान भी है। इसीलिए अवतारों की कल्पना यहां हुई और अवतारों में सारी कमजोरियां भक्तों ने आरोपित की और केवल आरोपित ही नहीं की बल्कि उसको अपने से अधिक कमजोरियों से घेर दिया। एक साधारण गृहस्थ है वह एक से अधिक पत्नीवाला है तो वह भगवान को समझ लेता है कि भगवान हजारों पत्नीवाला है। उसको हजारों स्त्रियों से जोड़ दिया गया है।

अगर आदमी कहीं किसी एक को मार देता है तो समझ लिया जाता है कि भगवान करोड़ों को मार देता है। इस प्रकार अपनी कमजोरियां भगवान में जोड़ीं और अपने मन को खूब भूलभूलैया में रखा लेकिन इस भूलभुलैया से काम चलनेवाला नहीं है। जिसको ईश्वर कहते हैं, सत्ता कहते हैं, उसमें कोई क्षमा नाम की चीज होती नहीं है और यह निश्चित है कि जो हम करेंगे उसका फल हमें भोगना पड़ेगा। और यह भी भारतीय परंपरा की विशेषता है कि जिनको भगवान कहा गया उनको भी क्षमा नहीं किया गया है।

आप जानते हैं कि भगवान विष्णु ने नारद जी का मुंह वानर का बना दिया था और उनको मोहिनी नहीं लेने दिया था। उसके फल में वे राम हुए और उनकी पत्नी सीता हरी गयी। वे पत्नी के वियोग में रोये और वानर ही उनकी रक्षा किये। भगवान राम ने बाली को छिपकर मारा तो उनको क्षमा नहीं किया गया। कृष्णावतार में वे जरा नाम के व्याध से मारे गये। भगवान श्री कृष्ण ने शिशुपाल की भुजा उखाड़ ली थी तो वे जगन्नाथ जी में ठूंठें होकर बैठे हैं।

पंडितों की यह बहुत बड़ी उदारता है जो कि भगवान को भी उन्होंने क्षमा नहीं किया। पंडितों ने सबको कहा कि सब अपने कर्मफल भोगे। कोई भी अपने कर्मों के फल से बच नहीं सका। जब भगवान भी फल भोगता है तब हम लोग कैसे बचे रह जायेंगे। हमें भी अपने कर्मों के फल भोगने पड़ेंगे। इसलिए कर्म को पूजा समझें और कर्मों का ही प्रभाव मन पर पड़ता है।

"हमारा मन ठीक हो जाये-हमारा मन ठीक हो जाये"—ऐसा कहने से मन ठीक नहीं होगा। कुछ मंत्र इत्यादि जप लेने से भी ठीक न होगा। हां, मंत्र जपना चाहिए क्योंकि जपना बुरा नहीं है। जो जिस परम्परा में हों और जिस मंत्र को वे आदरणीय मानकर जपते हों, उसे आदरपूर्वक जपें। कोई मंत्र न छोटा होता है और न बड़ा। लोगों में यह पागलपन सवार रहता है कि अमुक मंत्र छोटा है और अमुक मंत्र बड़ा। कबीर साहेब ने एक पद कहा है—

संतो देखत जग बौराना।
साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करे अस्नाना।
आतम मारि पषाणहिं पूजे, उनमें किछउ न ज्ञाना।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ें कितेब कुराना।

कै मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना।
आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्भ भुलाना।
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना।
हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपुस में दोउ लरि लरि मूये, मर्म न काहू जाना।
घर-घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना।

साहेब का यह पद आप पढ़िये और देखिये कैसे वे एकदम झरझराते हुए चले गये हैं। एकदम निर्भय होकर वे कहते चले गये हैं। मालूम होता है कि भय नाम की चीज कबीर साहेब को मानो छू ही नहीं गयी है। जिसको भय है वह सत्य नहीं कह सकता। सत्य वही कह सकता है जो निर्भय हो।

लोग पगला गये हैं और सत्य से एकदम दूर भाग गये हैं। नाम जप में बड़ा साम्प्रदायिक भाव आ गया है।

संकुचितता बहुत हो गयी है। मैं कहता हूं कि कुरान का मंत्र हो, वेद का मंत्र हो, गुरुवाणी का मंत्र हो, निर्गुणी धारा का मंत्र हो, संतों का मंत्र हो, शैव का मंत्र हो, वैष्णव का मंत्र हो सभी मंत्रों का मूल एक समान है। उनमें थोड़ा भी अंतर नहीं है। अल्ला, राम या और भी दस-बीस जितना नाम आप जोड़ना चाहें जोड़ लें लेकिन यह समझें कि उनमें कोई भी नाम छोटा-बड़ा नहीं है और किसी में फल भी कम-बेश नहीं है। खास बात है अपने मन को संयत करना।

मन बकवास करता है तो उसे किसी नाम में लगा दिया और वह संयत हो गया और उसका बकवास थोड़ा घट गया। नाम जप तो मनरूपी गाड़ी को संयमरूपी पटरी पर लाने के लिए एक साधन है। कोई नाम छोटा-बड़ा नहीं होता। नाम जप और पूजा-पद्धति को लेकर बहुत साम्प्रदायिकता है। यह साम्प्रदायिकता बिलकुल गलत है और यह साम्प्रदायिकता आप कहीं शुरू करेंगे तो वह फैलते-फैलते कहां तक फैल जायेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। साम्प्रदायिकता जहां पर पैदा होती है, वहीं पर वह नहीं बैठी रहती है, फैलती है। अगर साम्प्रदायिकता का जहर शुरू हुआ तो उसमें राग-द्वेष आ जाता है और उसकी लपट सबको भस्मसात करती चली जाती है। इसलिए हमारा मन साम्प्रदायिकताविहीन होना चाहिए। यों तो हर धार्मिक व्यक्ति किसी न किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होता है और उसके नियमों का पालन करता है। ऐसा करना अच्छा है, बुरा नहीं है लेकिन दूसरे सम्प्रदायों के नियमों का आदर करना भी बहुत जरूरी है। इतने जड़ न हों जायें कि "सतनाम" कहें तो "रामनाम" कहना पाप हो जाये और अगर "रामनाम" कह रहे हैं तो "सतनाम" कहना पाप हो जाये। ऐसा न समझ लें कि हम तो अमुक नाम को जपते हैं यदि इसके अतिरिक्त कोई दूसरा नाम कह लेंगे तो पाप हो जायेगा।

किसी सूफी कवि ने कहा है-"आता है वज्द मुझको हर दीन की अदा पर। मस्जिद में नाचता हूं नाकूस की सदा पर।" कवि कहता है कि मुझे तो हर दीन की अदा पर, कायदे पर और रस्मो-रिवाज पर प्रसन्नता और प्रेम-मग्नता आती है। जब मैं मस्जिद में नमाज पढ़ता हूं और उसी समय किसी मंदिर में शंखध्वनि होती है तो मैं प्रसन्नता से नाच उठता हूं। ऐसे भी लोग हुए हैं और आज भी हैं जो अपने सम्प्रदाय के नियमों का पालन करते हुए दूसरे के नियमों को आदर दिये हैं और ऐसे लोग आगे भी होते रहेंगे। सद्गुणों की कोई कमी नहीं है। अच्छे लोगों की कमी नहीं है लेकिन हमारी दृष्टि संकुचित है। हम न तो सद्गुण देख पाते हैं और न अच्छे लोगों को देख पाते हैं। लोग मान बैठे हैं कि कोई नाम घोंट डालें तो बस सब ठीक हो जायेगा लेकिन यदि जीवन की प्रक्रिया ही खराब है, तब नाम घोंटने मात्र से कुछ नहीं होगा। नाम और मंत्र अपनी जगह पर ठीक हैं लेकिन जीवन की प्रक्रिया ठीक होनी चाहिए। आहार-विहार और जीवन-व्यवहार ठीक होना चाहिए।

हमारी एक-एक क्रिया का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है और मन की रचना क्षण-क्षण होती है। मन के

अनुसार हम होते हैं। जैसा मन वैसा आदमी होता है। मन ठीक हो गया तो आदमी शुद्ध हो गया और मन गंदा हो गया तो आदमी दुखी हो जाता है। इसलिए मन को ठीक करना बहुत जरूरी है और मन ठीक करने के लिए विवेक की जरूरत होती है। मैंने साहेब की साखी कहा था कि "मन सायर मनसा लहरिं" मन समुद्र है और इच्छाएं तरंगें हैं। "बूड़े बहुत अचेत' बहुत-से असावधान लोग उसमें डूब गये। "कहहिं कबीर ते बाचि हैं, जाके हृदय विवेक।" साहेब कहते हैं कि जिसके हृदय में विवेक होगा वही बचेगा। मन का पर्दा हट जाये तो सत्य का साक्षात्कार तत्काल हो जायेगा। मन का पर्दा हटना चाहिए।

किसी ने पूछा कि ब्रह्म कहां रहता है, किस गुफा में रहता है-"गुहां यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतम्" वह गुफा जिसमें शाश्वत ब्रह्म विराजमान है, कहां है। तो उत्तरदाता ने उत्तर दिया—"न पातालं न च विवरं गिरिणां नैव अंधकारः कुक्ष्योनोधिनाम्। गुहां यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टाम् कवयो वेदयन्ते।"

ऋषि कहते हैं—वह गुफा जिसमें ब्रह्म रहता है वह पाताल में नहीं है और न वह पर्वतों के खोह में है। न वह अंधकार में ही है। न वह समुद्र के पेट में ही रहता है। जिसमें शाश्वत ब्रह्म, अविनाशी ब्रह्म निहित है वह गुहा अविशिष्ट बुद्धि है यानी सामान्य बुद्धिवृत्ति है। सामान्य बुद्धिवृत्ति ही वह गुफा है जिसमें ब्रह्म रहता है। इसका अर्थ है कि जो हम रात-दिन सोचते हैं, यह सोचने का ऐसा बवंडर है जिसमें ब्रह्म छिप गया है। हमारा यही सोचना शांत हो जाये तो ब्रह्म दिखाई दे जाये। हमारा सोचना शांत नहीं होता। काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुख, हानि-लाभ, चिंता-फिक्र, रात-दिन कूड़ा-कचरा ही हम सोचते रहते हैं। इसलिए हमारा सोचना जब बन्द हो तब ब्रह्म के दर्शन होता है। पहले तो शुभ सोचकर अशुभ को हटाओ। फिर शुभ सोचना भी जब बन्द हो तब ब्रह्म के दर्शन होते हैं। अविशिष्ट बुद्धिवृत्ति ही वह गुफा है जिसमें ब्रह्म रहता है। इसका सरलीकरण यह है कि जिस मनोवृत्ति में हम लिपटे हैं वही मनोवृत्ति हमारे लिए अंधकार है। वही ब्रह्म, आत्मा, राम और सत्य के साक्षात्कार में रोड़ा है। इसीलिए ध्यान और समाधि की उपयोगिता है और इसीलिए चित्त की एकाग्रता की आवश्यकता है। ऋषि कहते हैं कि जिस गुहा (गुफा) में शाश्वत ब्रह्म रहता है वह गुहा अविशिष्ट बुद्धि है ऐसा कवि कहते हैं। कवि यानी क्रांतिद्रष्टा। जिसकी दृष्टि आर-पार हो गयी है। किसकी बुद्धि आर-पार हो गयी है। ऋषि बताते हैं—

भिद्यते हृदय ग्रंथिश्च छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

ऋषि कहते हैं कि जिसके हृदय की सारी गांठें कट गयी हों, जिसके सारे संशय क्षीण हो गये हों, जिसके सभी कर्म क्षीण हो गये हों, उसकी दृष्टि आर-पार हो जाती है। सभी गांठों के खुल जाने पर आदमी सच्चा कवि है और वही पार पहुंचा हुआ है। कोई गांठ जब न हो, किसी प्रकार का पक्षपात जब न हो तब आदमी क्रांतिद्रष्टा हो जाता है, कवि हो जाता है। "बुद्धिवृत्तिम्: अविशिष्टाम् कवयो वेदयन्ते" में जो कवि शब्द है उसके दो अर्थ हैं। एक वह जो कविता लिखता है और दूसरा वह जो क्रांतिद्रष्टा है। क्रांतिद्रष्टा का मतलब है जो पार पहुंच गया हो और उसी के लिए मैंने ऋषि के वचन का प्रमाण दिया। ऋषि कहते हैं कि जिसके पास कोई पक्षपात नहीं है वह क्रांतिद्रष्टा है।

हम बड़े जड़ और घोर पक्षपाती हैं। हम जाति, मजहब, परिवार और गोत्र के पक्षपाती हैं और ये बिलकुल झूठी-झूठी बातें हैं। जाति झूठी, गोत्र झूठा, मजहब झूठा और सारी शब्दावलियां अंत में झूठी हो जाती हैं लेकिन इन्हीं शब्दावलियों में हम चिपके हैं।

जांति-पांति, मत-मजहब और वर्ग में हम जड़ हो गये हैं और यह जड़ता बहुत नुवसान करनेवाली है। जितने दायरे में हमारी जड़ता होगी उतने दायरे में हमारा विनाश होगा। इसलिए उदार दिल होना चाहिए लेकिन हम उदार नहीं हैं, घोर पक्षपाती हैं। हम घोर जड़ हैं और हमारे चित्त का यह विकार दूर होना चाहिए।

क्रमशः